विषय सूचि

वेदमाता (ऋग्वेदिक भूगोल)

अर्चना

वेदमाता नाम की यह हेतु कितव उन देशों, प्रांतों, पर्वतों, नदियों, स्थानों, ऋषिग्रामों का वर्णन करती है जिनसे प्राचीनतम मानव मूल पुरुषों का, देव ऋषियों का, असुर और राक्षसों का संबंध रहा है। इस पोथि में मध्य येसियाई सिद्धांत का खंडन किया गया है ताकि जन साधारण को, विद्यार्थियों को, अध्यापकों को मूलस्थान के बारे में निश्चय करने का सुभीता प्राप्त हो। जल्प्या और धृष्टियन्त का वर्णन ऋग्वेद में होने से, इनको प्रकाश में लाया गया है। साधारण तौर पर देखने से पृथिवि निर्जीव प्राण रहित मानी जाती है। वेदज्ञ मित्रों का मत है कि इस ब्रह्मांड में जो कुछ भी दृश्य अदृश्य है, उन सब में ईश्वर का अंश और शक्ति है। अतः अतिवृष्टि से पृथिवि माता को कष्ट होता, जैसा कि अति अधिक भोजन से प्राणियों को, या यों कहिये अपचन हो जाता है, उल्टी होने लगती है। इसी तरह अनावृष्टि से भूमि सूखने लग जाती है, कमजोर हो जाती है, मुर्झा जाती है मानो यह स्वयं विभूषित होकर अन्न उत्पादन करने में असमर्थ हो जाती है। इसलिये अनावृष्टि होने पर मधुर वर्षा के लिये यज्ञ किये जाते थे।

इस ग्रंथमि की यह इच्छा थी कि ऋग्वेदिक विचारों को ऐसी भाषा में प्रकट किया जाय जिसे सर्व साधारण सरलता पूर्वक पढ़ सकें, समझ सकें, और यह भाषा ऋग्वेद की भाषा से अति निकट भी हो। गढ़-कुमाऊं की बोलियों में निकटता

का गुण होने पर भी, उनका प्रचार अधिक सीमावद्ध है, और इस जमाने में वह किताबी भाषा का पद त्याग चुकी है। संस्कृत अति निकट होने पर भी अति विकट है। वह पिजड़े के भीतर वसनेवालि चिडिया की तरह कैद रहती है, और साधारण जन उससे अनभिज्ञ हैं। यदि ऋषियों के विचारों को इंदुदेश में प्रचार करना है तो और सो भी येक ही भाषा के द्वारा तो, हिन्दी के अतिरिक्त इस अभिप्राय को पूर्ण करने में अन्य भाषायें असमर्थ सी दीखती हैं। यह मानी हुई वात है: ऋग्वेद समस्त मानव जाति का पैतृक धन है और विना भेद भाव के उसके विचारों को प्राप्त करने की सबको सुविधा मिलनी चाहिये। यदि यह विदित हो जाय कि ऋग्वेदिक ज्ञान की कामना जागृत हो उठी है, ऐसा करने में भी कोई कठिनता न होगी। इस समय तो ऋग्वेद को लोग भूल जैसे गये हैं।

यहां, यह प्रकट कर देना आवश्यक है कि ऋग्वेदिक शब्द, माहवरे और तरज ग्रामों की प्रचलित हिन्दी में अब भि विद्यमान हैं। उदाहरण के लिये कुछ नमूने यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—आ, को, जल्प्या, समतु, दुर्मतु, मन्यु, गणेशु, पियारु, कृणारु, जवारु, दशद्यु, तूर्जी, लक्ष्मा, चंद्रा मंगु रावत, अच्छा, जानति, आयन् वे, रे, अरे, आरि, सीद सादनं (वैटो वैटी जाव), चारु चक्षु (चारों आरस), वृष्टि वनाव, वृष्टि वनि, यक्ष्मा, जनिमा, आनजे (आना जाना) योनिमा,नव यो नवति (९९ का फेर) । इससे सावित है कि ऋग्वेदिक युग में ऋग्वेदिक भाषा ग्राम निवासियों की वोल-चाल की भाषा थी।

हिंदी

दूसरा प्रबल कारण अपनी कितव-केतुओं को हिंदी में लिखने का यह भी है कि यह भाषा उत्तर भारत में प्रधानता प्राप्त कर चुकी है, और अब तो इसको राष्ट्र भाषा का श्रेष्ठ पद पाने योग्य स्वीकार किया गया है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश की सरकार हिंदी में डिग्री कक्षाओं के लिये विविध विषयों पर पाठ्य पुस्तकें लिखवाने के लिये पुरष्कार भी देने को है। अब से पेश्तर भी हिंदी के लेखकों को पुरष्कार भी दिये जा चुके हैं। अतः सरकार धन्यवाद की पात्र है, इसमें संदेह नहीं, लेकिन यह मालूम नहीं हो रहा है कि सरकार की इतनी सहायता, सहानुभूति होने पर भी उत्तर प्रदेश के राज्य की सीमाओं के भीतर अंग्रेजी अब भी वैसी ही घुड़दौड़ लगाती रहती है, जैसी कि अंग्रेजों के प्रभुता के समय। कभी कभी सुना जाता है कि सरकार के भाषा विशारद विशेषज्ञ सलाहकार यह सलाह देने को असमर्थ हैं कि अंग्रेजी का प्रचलन राज्य मे बिना विलंब बंद किया जाय। इसका सबब यह बतलाया जाता है नवीन शब्दों का गढ़ना जारी है। समाचार पत्रों से खबर मिली है कि सीम्यंट के लिये वज्र चूर्ण बना है, न्यकटाई के लिये कंठ लंगोट कहकर कंठ की शोभा बढ़ जायगी। जनता ऐसे शब्दों को मनोरंजन का साधन समझे तो आश्चर्य नहीं। क्या सरकार ऐसे शब्दों को अपनायेगी ? सिम्यंट और न्यकटाई तो येक लंबे समय से देश की भाषाओं मे स्थान प्राप्त कर चुके हैं, इन्होंने ऐसा कौनसा अपराध किया है जो ये देश से निकाले जांय। भारत तो शरणागत वत्सल रहा है, अन्य देशों के

निवासियों के वंशो को यहां रहने को सरकार ने कन्सेशन दे रक्खे हैं।

हमारे देखने में तो अंग्रेज १६४५ में चले गये थे, तब से यह विलव बालक की तरह पुष्ट होता हुआ अष्ट वर्ष का गोरे चमड़े चेहरे का हो चुका है। यह इतना आकर्षक है कि दैनिक पत्रों के संपादक ही नहीं, राज्य के अधिकारी भी इसके मोहिनी रूप से मोहित है, मानो इसे चिरायु होने की आशिर्वाद देते रहते हैं। क्या यह कहना गलत होगा कि वि-लंब तो अपनी वि विशेषता से लंबाई नापता है, वह किसी की सहायता पाने के लिये किसी की खुशामद नहीं करता? हमारा तो नम्र निवेदन यह है कि इस उद्दंडता के रूप विलब को समर्थवान् विफलता के गहरे कूप मे धकेल सकते हैं, लेकिन यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है परंतु इच्छा बलवान होनी चाहिये। इसीका अभाव खटक रहा है।

ऋग्वेद हमें बतला रहा है कि संसार की सभी भाषायें उसकी छंदमय भाषा से उत्पन्न हुई हैं—अपागन्तस्थान-अफगानिस्तान ओफगॉनस्टेशन येक ही अर्थ रखते है, कपर्दि से ही कप, कैप संबधित है। शब्द सादृश्य जो अन्यत्र इसी पोथी में दिया गया है, इसका प्रमाण हैं। इसलिये, सभि भाषायें आपस में स्वसार हैं, अर्थात् येक साथ अच्छि तरह सरक्ती हैं, सरक सक्ती है। येक ही स्रोत से उत्पन्न होने से उनको येक दूसरे का विरोधि या शत्रु समझना गलत है। यदि किसी भाषा में कोई कमी है तो अन्य भाषाओं की सहायता से पूर्ण की जा सक्ती है। लेकिन कहा जाता है कि देवनागरी में फारसी अंग्रेजी शब्दों को लिखकर उनका सही

उच्चारण नहीं हो सकता और यदि उनको लेना है तो फारसी और रोमन लीपि में लिखना होगा। यह दलील गलत है, निहायत गलत है, बल्के गफ़लत है। स्त्री पति की पत्नि होने पर मिस का मिसेज हो जाती है, कुमारी से सयाणि-शयनी होकर अपना ढंग बदलने पर प्रसन्नचित्त रहती है। यदि पति की भाषा उसकी मातृ भाषा नहीं है तो उसको भी शीघ्र ही ग्रहण कर लेती है। अंग्रेजी का पक्ष लेने वालों की चाल वकील की सी होती है, जो केवल अपने पक्ष का समर्थन करने में उसके अवगुणों को प्रकट नहीं करता। वह यह देखना नहीं चाहता कि अंग्रेजों ने गंगा का गंजेज, मथुरा का मटरा वाराणसि का बनारस, हुकहिंगोड़ का होकी, कानपुर का कावनपोर, लीपो का लीपोदंग बनाकर स्वीकार किया, लेकिन देवनागरी में लिखने से इनकार किया। इसी तरह इंदुदेश वासियों ने भी हौसिटल का अस्पताल, सौक्रेटीज का शुकरात, अरिस्टोटल का अरस्तु, बियरर का बैरा, रिपोर्ट का रपट, लौर्ड का लाट, स्टेबल का अस्तबल, परेड का परेट बनाकर स्वीकार किया। और कुछ शरल शब्द तो ज्यों के त्यों कबूल कर लिये गये, जैसे—पार्क, फुटबौल, मार्च, रोड और अँग्रेजी के महिनों के नामों को अपने ढंग में लाकर अपनाया गया। पल्टन और पुलिश में ट्रेनिंग के शब्द वही हैं जो पहिले थे। यह पद्धति स्वाभाविक है। अन्य भाषाओं के जो शब्द हिंदी में स्थान पावेंगे उनका उच्चारण स्वयं ही, अनायास ही हिंदी के ढंग टंग का हो जायेगा। परदेशी उच्चारण की, ढंगढील की आवश्यकता ही नहीं बल्के परदेशी उच्चारण अशोभनीय है।

सार्वजनिक होने के लिये, भाषा मधुर शरल होने से

आसानी से सीखी जाकर उसका प्रचार भी सर्व साधारण में विना प्रयास ही होना सभव है। इस तरह सर्व गुण सपन्न होने के लिये उसको व्याकरण के जटिल बंधनों से नहीं जकड़ने से वह तीव्र गति से अग्रगामी होने मे समर्थ हो सकती है। यही मुख्य कारण है कि बौद्धों के समय पाली भाषा आगे बढी, और इस समय सूरदास और तुलसीदास सर्व प्रिय हैं। ऋग्वेदिक काल में ऋग्वेदिक भाषा ऐसी ही शरल थी और इस सर्वोत्तम गुण के कारण यह इस भूमडल मे सर्वत्र आदरणीय हुई और संसार की सभी भाषाओं की वह जन्म देनेवाली जननी है। हिंदी भी उसी सार्वजनिक भाषा की सुता प्रसूता, लोक तनया है। हिंदी का व्याकरण भी शरल है। ऋग्वेदिक भाषा छदमय कविभाषा होने से व्याकरण से स्वतत्र ही थी। बालक बालिकाय अपनी मातृ भाषा को विना व्याकरण के ज्ञान के शुद्ध बोलते ही हैं। इसलिये सचिवालय मे, राजभवन मे, मत्री गृहों मे हिंदी को सिंहाशनारूढ करने में विलव को उसी तरह पदाघात करने मे हित है, जैसे कि वरवधु गृहस्त के स्वर्गद्वार देवीद्वार में प्रवेश करने को सप्त दोषों को अपने निकट न आने के लिये सप्त पदी के सस्कार मे उनको लात मारते हैं, घसीट कर बाहर फेंकते हैं।

चेस्टिटि (Chastity)

इस समय भाषा की चेस्टटि पर बहुत जोर दिया जा रहा है। यह गलत है, निहायत गलत है, बल्कि हानिकारक है। यदि चेस्टिटि के पोषक वेदमाता भूमि के चस्-चसगौणो चसगाणो शब्दों पर और इनसे सबधित अग्रेजी के शब्द च्यस (chess, च्यस्ट (chest), चेस्ट (chaste) और

चेस्टाइज पर विचार करें तो उनको हृदयंगम हो जायगा कि चेस्टिटि का आसन इतना अधिक ऊंचा है जैसा कि आसमान में दिक लोक जहां केवल येक देव के अन्य कोई नहीं पहुँच सकता।

चेस्टिटि शब्द का अर्थ होता है, अपनी कामनाओं को स्वतंत्रता को चेस्टाइज करके ऐसी पवित्रता प्राप्त करना जैसि कि पति पत्नि में होनी चाहिये—"तू मेरे लिये, मैं तेरे लिये" अर्थात् दंपत्ति अपनी स्वतंत्रता को जलाकर, उससे उत्पन्न अग्नि से दो अंगों का येक अंग बनाकर पवित्रता का आदर्श संसार के सामने रखकर दुनिया का हित कर सकते हैं। स्वतंत्रता को खाक में मिलाने का यही भाव च्यस्ट और च्यस् दर्शाते हैं। च्यस्ट का अर्थ होता है येक बड़ा डब्बा जिसके भीतर मानो परदे में पति पत्नि प्रेम से रहते हैं। च्यस बोर्ड का खेल दो ही व्यक्ति खेलते हैं। अपने मनोरंजन के लिये दंपति ने इस खेल को जन्म दिया था। इस लिये इस खेल का संबंध भी चेस्ट और चेस्टिटि से है। अब स्पष्ट हो जाना चाहिये कि पति पत्नि अपने को दंड देकर मानो कोड़े लगा कर चेस्ट बनकर चेस्टिटि को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

—भाषा दंपतियों की सी घरेलु चीज नहीं है जिस पर चेस्टिटि लागू हो सके। चेस्टिटि प्राप्त करने के लिये भाषा को चेस्टाइज करना दंड देने का अर्थ होता है, उसकी स्वतंत्रता को नष्ट करना, उसकी वृद्धि को रोकना। जिस तरह आत्मा शरीर के लिये है, उसी तरह भाषा राष्ट्र के लिये है। वसिष्ट वंशजों ने आत्मा का वर्णन किया है "सहस्रवल्शं अभि संचरंति ......अप्सरस" अर्थात् आत्मा सहस्रों शाखाओं से अप्सराओं की तरह संचालन करता रहता

है"। वस ठीक यही उपमा लागू होती है भाषा पर क्योंकि उसने तो प्रत्येक घर की ही नहीं, प्रत्येक राज्य विभाग की शोभा बढानी है, उनको उन्नत करना है। अत. चेस्टिटि का प्रश्न ही न खडा किया जाय इस निवेदन का मतलव यही है।

अन्य लीपियां

अन्य लीपियों से हमारी द्वेष भावना नहीं है। जहा उनका घर है, वहीं रहने मे उनकी शोभा है। यदि हमारे देश मे अन्यों ने उनको अपने आधिपत्य का साथी बनाया तो, उस आधिपत्य के उठते ही उनका उठना भी अनिवार्य है। लेकिन देखा जा रहा है कि बहुत से जोरदार लोग जोर लगाने मे अथक परिश्रम कर रहे हैं, इसलिये कि ये परदेशियों के आधिपत्य के चिन्ह अब भी मौज उडाते रहें।

स्वदेश मे अन्य लीपियों को घुसेड़ने का मतलव होता है, स्वदेश की लीपि पर छुरा घुसेडकर उसको निर्जीव करना जैसा कि वृक्ष को काटकर सुखाकर उसका काठ बना देना। येक देश मे येक ही लीपि का प्रचार करने का अर्थ होता है उस देश की येकता को सुदृढ़ बनाये रखना, उस देश के लोगों को सिकस्त सिकस्ता से सुरक्षित रखना। इस विचार को आदर न देने का अर्थ होता है अपने पैर पर स्वय ही कुठाराघात करना। जो लोग यह जानते हुये, न जानते हुये, भूल से, या कुत्सित विचारों से देश के लिये, राष्ट्र के लिये अन्य लीपियों के पक्षपाति बनते हैं उनको देश हितैपि, देश भक्त, राज भक्त हरगिज नहीं कहा जा सकता, और न वे देश को येकता के पक्षपाति माने जा सकते। जिनको अन्य देश के साहित्य, लीपियों का शौक है, वे उनको

अपनाने में स्वतंत्र अवश्य हैं लेकिन इस संबंध में उनको राजकोष से सहायता देना अन्याय है, अपीजम्यंट है और शत्रु पक्ष का बल बढ़ाना है। अतः राज्य के भीतर अन्य लीपियों को राज दर्बार में, राज्य के दफ्तरों में घुसेड़ना हानि कारक है, बालकों पर अधिक बोझ लादना है क्योंकि सभी को सरकारी अफसरों से, दफ्तरों से काम पड़ता ही है, बहुत से तो सरकारी दफ्तरों में काम करके अपनी आजीविका भी चलाते हैं। सरकार ने रजिस्ट्रेशन के दफ्तरों में फार्सी लिपि घुसेड़ कर किस तरफ करवट बदली है, इस पर वही विचार करें। हमारा तो विचार है कि उत्तर प्रदेश की आदरणीय सरकार बहुत अच्छि तरह जानती है कि राज्य का कार्य पत्र व्यवहार दो लीपियों में चलाना असंभव है, और व्यर्थ का व्यय बढ़ाकर धन का दुरुपयोग करना है। लेकिन ऐसा मालूम हो रहा है कि सरकार इस बात को भूल गई है कि अपीजम्यंट से शांति नहीं होती है, वह भयानकता के व्याघ्र की ग्वाव का और अधिक चौड़ा बलवान करता है। इतिहास में इसके दृष्टांत भयानक अक्षरों में चेतावनी देते रहते हैं। यदि पद्मावति के दर्शन एक कामातुर को न कराये जाते तो उसकी कामनाग्नि में घृत की आहुति देकर बेचारि अबला को स्वय अपनी आहुति न देनी पड़ती। सोमनाथ के पुजारियों की अपीजम्यंट की पॉलिसि सोमनाथ को बचाने में असमर्थ रही, तिलक की अपीजम्यंट ने देश विभाजन की सहायता की। कौरवों को अपीजम्यंट का मीठा स्वाद चखा कर कुरुक्षेत्र का युद्ध न टल सका। दूसरों को अपीजम्यंट का स्वाद चखानेवाला अपने लिये विषवृक्ष की उत्पत्ति करता है, ये दृष्टांत इसे सिद्ध करते हैं। राज्य की रक्षा, उन्नति, येकता और दृढ़ता व आयुधों के द्वारा हो सकि है न कि अपीजम्यंट

से। अन्य लीपियों के प्रचार में सहायता देना अपने को धोखा देना है। जिस चिनगारि ने प्रज्वलित होकर देश विभाजन किया, वह चिनगारी सरकार की सहायता पाकर बलवान होती जाती है। यह राजनीति गलत है। जिन ऋषियों ने विश्वव्यापि महान् साम्राज्य की स्थापना की थी, उनके विचार ऐसी राजनीति का विरोध करते हैं। इस देश में फारशी लीपि के पक्षपाति प्रयत्रण करने में नहीं थकते कि फारशी में लिखी उर्दू भाषा प्रत्येक सरकारी विभाग में शोभा का पद ग्रहण करे और दृष्टांत दिया जाता है कि युरोप के येक छोटे से देश में तीन भाषायें येक साथ कार्य करती रहती हैं, यहां उत्तर प्रदेश में भी ऐसा ही क्यों न हो। ये चतुर डिप्लोमेट जानते हुये भी यह प्रकट नहीं करते कि उस देश में ये तीनों भाषायें येक ही लीपि में लिखी जाती हैं। येक कोमल हृदय शास्त्रि जी ने ऐलान भी किया कि उर्दु तो हिंदी की येक तरज मात्र है लेकिन देश की लीपि में लिखने से ही उसे यह इज्जत मिल सकती है। यहां यह भी प्रकट कर देना ठीक होगा कि रूश में विंशति भाषायें हैं लेकिन लीपि येक ही राज्य करती है। येक लीपि का महान् लाभ इसमें है कि सभी देशवासी सोचने समझने में अति निकट आते रहते हैं। लेकिन फारशी लीपि के पक्षपाति तो प्रचलित अग्नि के चिनगारे जैसे सरकार को भयभीत करके देश की येकता को नष्ट करने पर तुले हुये हैं जब कि खतरे की खड्ग देश के शिर के ऊपर लटक रही हैं और सरकार देश की येकता को येक लीपि द्वारा सुदृढ़ करने का प्रयत्न कर रही है।

हमारा तो निवेदन है कि उड़दू उर्दू को भाषा का पद देने का अर्थ होता है अपनी अज्ञानता का प्रदर्शन करना।

उर्दू तो उर्द की दाल से भी संबंधित नहीं है। वह तो उड़दू है जो कि चिड़ियों के मानिंद उड़ती हुई उड़ते हुये लोगों की बोली होते हुये उसका आधार कहीं है ही नहीं। लस्करीयों की बोली जो हुई। यह किसी देश की भाषा नहीं। इसको उर्दू कहना भी गलत ही नहीं है अपभ्रंश ही नहीं है, यह तो फारसी लीपि का चोगा पहिन कर उसके भीतर कटार छिपा कर देश की येकता को मृत्यु शय्या पर पहुंचाना ही इसकी येक मात्र अभिलाषा है और इस कार्य को अपना परम पुनीत कर्तव्य मानती है। फूट ने देश को येक सहस्त्र वर्ष तक गुलामों का देश बनाया, जयचंद मत बनो। सावधान! सावधान!!!

भाषा का पद प्राप्त करने को किसी वाचा को भी कर्म शक्ति में बलवान होना चाहिये। इस भाव को प्रदर्शन करने के लिये कहा करते है कि भाषा को क्रयमाण शक्ति संपन्न होना चाहिये। इस उड़दू में इस सर्व गुण संपन्न शक्ति का बिल्कुल ही अभाव है।

उधार-पुधार लेकर चमक दमक दिखाने से, फिल्म का सा स्टार बनकर ही, राज्य भाषा, राष्ट्रभाषा का पद कभी हासिल नहीं हो सकता।

दूसरा विचारणीय विषय यह है कि उर्दू (न कि उड़दू) नामकरण हुआ था ग्रामों की उस बोली का जिसे ग्राम निवासि जनता बोलती थी लेकिन परदेशियों ने देश को हिंद कहकर उनकी भाषा को भी हिंदी कह दिया। जिस तरह भोजन पदार्थ भात रोटी को उर्द की दाल स्वादिष्ट बनाती है, यही भाव दर्शाने के लिये ग्रामों की भाषा को उर्दू कहते थे।

जब येक ब्रह्मर्षि कलकत्ते मे धारा प्रवाह संस्कृत मे उपदेश देते थे, येक दिवश, ब्रह्म समाज के प्रवर्तक श्री केशवचद्र सेन उनसे मिले और कहा कि तुम्हारी संस्कृत को साधारण लोग समझ नहीं सकते, अच्छा यही होगा कि अपने विचारों को लोगों के सामने हिंदी में प्रकट कर देश मे समाजिक सुधार पर जोर दो, उस जमाने में भी यह था मत एक अंग्रेजी के महान् विद्वान् बंगाली का। इन्हीं सब बातों ने हमको उत्साहित किया है ऋग्वेदिक विचारों को हिंदी में लिखने के लिये। "ऋषियों का जगत् व्यापि साम्राज्य" और ऋषियों की फिलौसफि को समझने के लिये ऋग्वेदिक इतिहास और वेदमाता, आशा की जाती है कि अग्रगण्य दूता के सदृश प्रेषित किये जा रहे हैं। उत्तर प्रदेश की महा मनासि सरकार से अत मे निवेदन किये बिना नहीं रहा जाता कि दुनिया मे शांति के लिये वैदिक रिसर्च स्तूप (Vedic Research Institute) की स्थापना मे अपने दक्षिण के दक्षिण हस्त से "अर्थशिराभि मर्गन्" से अर्थ अर्पण अस्तु' यह मंसा प्राप्त हो का आशिर्वाद देवे। अत मे प्रज्ञा प्रेस वालूगन को धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जाता जिनके कार्य कर्त्ताओं ने बड़ा लगन और उत्साह मे वेदमाता को सूर्य के दर्शन करा रहे हैं। ओं स्व प्रभ॥

हरीराम धस्माना
पो० चाइमन (नारसेंटी) लखनऊ





वेदमाता

वेदोक्त ऋषियों की रचनाओं को संग्रह करके वेद संहिता बनी है। जिस भूमि में उन्होंने पद्य रचना की है, उस भूमि को वेदमाता कहते हैं। उस भूमि को ऋग्वेदिक ऋषि परमव्योमन् और दिवः१ कहते थे। उसी भूमि को अथर्व वेद के समय वेदमाता की पदवी प्राप्त हुई। इसकी महिमा गाई गई है कि वह तो द्विजों को पवित्र करने वाली है, वेदाध्ययन की तरफ प्रेरणा दिलाती है, यहीं ब्रह्मलोक है क्योंकि ब्रह्म के गीत यहां गाये जाते हैं, स्तुतियां की जाती हैं। वेदमाता से स्तुति की जाती थी "हमें दीर्घायु प्राण, सन्तान, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मवर्चस प्रदान करो"।*

---

१ परमव्योमन् और दिवः उस देवलोक को भी कहते हैं जहां येक देव सहस्त्रों ज्योतियों से प्रकाशित रहता है जब ब्रह्मांड भुन कर नाश हो जाता है और शुन्य हो जाता है।

* स्तुता मया वरदा वेदमाता, प्रमोदयति पावनी द्विजानाम्। आयु, प्राणं, प्रजां, पशु, कीर्ति, द्रविणं, ब्रह्मवर्चसं। मह्य दत्वा व्रजत ब्रह्म लोकं ॥ अथर्व वेद १९.७१.१०

अष्ट दिशायें।

वेदमाता तो परमव्योमन् हिमालय की त्रिवः भूमि का येक अंग अंश है। ऋषियों ने दिशाओं का, पृथिवी का मापदंड हिमालय को स्वीकार किया और उसकी लम्बाई से पूर्व पश्चिम दिशाओं की स्थापना हुई। इसके उत्तर में जो ध्रुव है, उसको उत्तरि ध्रुव नाम मिला, जो ध्रुव नीचे निचान देशों की तरफ है, उसको कहा गया दक्षिणि ध्रुव। जिन देशों के निवासि निऋत थे, ऋत व्यवहार को जानते ही नहीं थे, उन देशों को कहा गया नैऋत्य कोण के निऋति देश। समस्त पृथ्वी पर शांति स्थापना की गरज से जिन देशों का ईशानत्व हिंसाकारी मरीचियों को दिया गया, उसको नाम मिला ईशान कोण। जिन देशों में जाकर हमारे ऋषि पितर अग्नि दग्धा हुये, उनकी दिशा को कहा गया आग्नेय कोण। जिन देशों का वायु स्वदेश हिमालय की सुरवाई वायु के सदृश था और जो ऋषियों को प्रफुल्लित करता था, उस तरफ को कहा वायव्य कोण। इस तरह पर स्थापना हुई थी चतस्र प्रदिशा विदिशों की।

पृथ्वी।

क्योंकि प्राणियों को भोग्य पदार्थ भूमि से प्राप्त होते हैं, उसी पर वे बसते हैं, उनकी क्रीड़ा का क्षेत्र, भूमि ही होती है उसी में वे सुख दुख भोगते हैं, इसलिये वेदमाता के भूगोलिक वर्णन के सम्बन्ध में यह बतलाना आवश्यक समझा गया है कि भूमि की उत्पत्ति कैसे हुई। इस विषय में अपनी मननशक्ति और दिव्य दृष्टि के द्वारा ऋषियों ने जो ज्ञान प्राप्त करके अपनी रचनाओं में सुरक्षित कर रक्खा है, उसका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है। यहां यह ऋचा भी उद्धृत की

जाती है, जिसके समक्ष वेद निरुक्तों ने भी शिर झुकाया है, और अभिमानियों का गर्व भी गारत हुआ है:—

विश्वतः चक्षुरुत, विश्वतो मुखो, विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
स बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै, द्यावा भूमि जनयन् देव एकः*।
१०.८१.३

अर्थ—येक देव के चक्षु सब तरफ हैं, मुख सब तरफ हैं, बाहु सब तरफ हैं, पाद सब तरफ हैं। उसने बाहुओं से धम किया, मानो सुपर्ण ने अपने पंख फड़फड़ाये और निमिष मात्र में द्यावा भूमि का जन्म हो गया। धमति शब्द यह भी बतलाता है कि धौंकनी के धम धम करने से जैसे चिनगारे आसमान की तरफ उठते हैं, भूमियों के पिंड आसमान में प्रकट हो गये जिनको नक्षत्र कहते हैं। या जैसे आतिशबाजी के गोले पर आग लगने से धम धम होते हुए आसमान असंख्य चिनगारों से भर जाता है, वैसे ही, नक्षत्र मंडल से आसमान भर गया। ऐसा होते हुये भी येक ऋषि ने प्रश्न

---

* इस ऋचा में कवि ने अपनी कविता शक्ति का परिचय तो दिया ही है, लेकिन येक देव की अद्वितीय शक्ति का दृष्य एक ही धमति शब्द में भर कर संसार को चकित कर दिया है। येक देव के सर्वत्र चक्षु, मुख, बाहु पाद फैले हुये हैं कह कर ईश्वर की सर्वव्यापकता, सब प्रकार की महान् शक्ति का विचित्र चित्र खींचकर अभिमानियों का अभिमान इस तरह चूर्ण कर दिया है मानो वे विद्युत से चलनेवाली चक्की में पीस दिये गये हैं।

किया था कि यह पृथ्वी रूपी घर कैसे सामान से बना और वह आया कहां से ? इसका उत्तर ऋग्वेद में विविध प्रकार से दिया गया है। येकने कहा कि यदि मनन शक्ति से काम लो तो मालूम हो जायगा कि पृथ्वी को वही येक देव धारण करता है, अन्य ने कहा कि पृथ्वी के भीतर वही बसा हुआ है, लेकिन ऋग्वेद में जो वर्णन येक देव का मिलता है, उसी की सहायता से इसका उत्तर दिया जा सका है, वह इस प्रकार है:—

ईश्वर सीमा रहित समुद्र की तरह, राई के दानों के सदृश रज कणों से भरा है, उन्हीं से भूमियों के पिंड बने हैं। ये पहिले धूमकेतुओं के रूप में प्रकट हुये और घूमने लगे। इनके अतरिक्त में ईश्वरीय शक्ति अग्नि (Energy) विद्यमान थी। लाखों वर्ष परिक्रमा करते हुये ये धूमकेतु ऐसे द्रव रूप में हो गये जैसा कि ईख रस, फिर यह पकते पकते गुड़ की तरह दृढ़ होकर कहीं पर्वत, कहीं सरोवर, कहीं समुद्र, कहीं सरितायें हो गयें। छोटे छोटे पिंड हर समय रात दिवस गिरते रहते हैं और उनसे धूल जैसे कण पृथिवी पर पड़ते रहते। यह भी वैदिक विचार का समर्थन करता है।

वेदमाता भूमि की सिमायें।

सीमा जानने का अर्थ होता है किसी देश की दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करना। साधारणतया दिशायें चार मानी जाती हैं, विदिशाओं सहित आठ भी मानते हैं। नीचे ऊपर लगाकर दश भी मानते हैं। लेकिन ऋषियों ने अपनी जन्म भूमि की सीमाओं का वर्णन इस तरह नहीं किया है। उस दिव्य भूमि का वर्णन उनकी पद्य रचनाओं में कई तरह से मिलता है।

(१) काश्यप मारीच कहता है, उसके तो सप्त दिशा हैं जिनसे ऋषिवीर नाना सूर्य जैसे आया जाया करते हैं। अष्ट दिशाओं के बजाय सप्त दिशा और एक सूर्य के स्थान पर नाना सूर्य।

सप्तदिशो नाना सूर्याः। ९.११४.३.

इस ऋचा में दिशा का अर्थ द्वार है। मानावर्ष की सीमाओं पर सप्तद्वार हैं, मानाद्वार, नीतिद्वार, नीलमद्वार, कोटद्वार, हरद्वार, गुरद्वार और देवलद्वार। यह येक पहिचान है मूलस्थान को जानने की।

(२) सप्त सिंधुन् १.३२.१२ मानावर्ष की मुख्य नदियां सात हैं। इन पर हमेशा सेतु भूल बनाये रखने की आवश्यकता होती थी। वर्षा काल में ये अतर हो जाती हैं। इनके अतिरिक्त ९९ असंख्य स्रोत हैं जिनको गाड़ गंगा, गधेरा कहते हैं। नव च यन् नवति स्रवंति। १.३२.१४ १०.१०४.८ भी इन सप्त सिंधुओं में गंगा भी है जिसको समस्त सभ्य संसार जानती है यह है दूसरा तरीका ऋषियों की जन्म भूमि का पता लगाने का।

(३) माना वर्ष पर्वतीय प्रांत है और माना प्राम में वर्ष में तीन ही ऋतु होती हैं, शरद, हेमंत और वसंत। इससे भी मूल स्थान का परिचय मिलता है।

(४) ऋषियों के स्थान तो बहुत हैं। वायु और अगस्त वैदिक ऋषि हैं। वायु की पौड़ी और अगस्त का अगस्तमुनि बहुत प्रसिद्ध स्थान है। यह है चौथा मार्ग मूलस्थान के परिचय का।

(५) यह तो जगत प्रसिद्ध है कि वैदिक ऋषि सोमरस पीते थे। जब सोम और उसके सप्तदिशो नाना सूर्य दिग्विजय से लौटे थे तो उनका स्वागत किया गया। शर्यणावति और

आर्जिकिया प्रांत की सोम वनस्पति का सोमरस उनको पिलाया गया था। ९.११३.१२, पर्वतान् शर्यणावतः वाक्य भी वेद में है। इन दो नदियों का वर्णन प्रियमेघ ने भी किया है। इससे भी मूलस्थान का परिचय मिल सकता है।

(६) अहि (नाग) वंश से इन्द्र को बहुत युद्ध लड़ने पड़े जिनका वर्णन ऋग्वेद में है। नागपुर नाम का प्रख्यात प्रांत गढ़वाल में है। इससे भी मूलस्थान का पता लग सकता है।

(७) रुद्र संबंधि सूक्त और ऋचाओं से स्पष्ट है कि राजा रुद्र की प्रजा अहिमानव थे। विष्णु, सूवा रात्रि थे (१०.१२५.३।७) यह मोटी बात है कि केदारनाथ, बद्रिनाथ गढ़वाल में है। ये सब सूत्र हैं प्रथम सभ्य मानव के मूलस्थान की सीमाओं को निश्चित करने के।

वैदिक पर्वत

शर्यणावत १०.३५.२

गढ़वाल में शरणग्राम, और शरणा का डांडा चंद्रपुधन में हैं। इसी पर्वत से शरणा की गाड (शर्यणावति) नीचे को बहती है जिस पर पांथर के शूर दधिचि और धृष्णु इन्द्र ने वृत्रासुर को ललकारा था। इस पर्वत की प्रतिष्ठा मातृन सिंधुन् के समान मानी गई थी।

हिमवंत १०.१२१४

हिमालय के चतुश्रष्टि शृंग के समीप जल्पा के समय सम ऋषियों की प्राण रक्षा हुई थी। इसी पर्वत में ऋषियों के

स्थान हैं, मत्त सिंधव नवर्ति च नव स्रोत इसी की देन हैं, ऋग्वेद की रचना यहीं हुई। सभ्य मानव के देशांतरगमन का केन्द्र यहीं था। सप्त वृष्न यहीं है। पर्वतान् वृहतो हिमालय को भी कहते थे। सप्त पर्वत यहीं हैं। ८.५४.२। ४.१७.७.।

मरीचि प्रवतो १०.५८.६

मरीचि पर्वत ही माना पर्वत है जहां मरीचि के वंशज मारिचा मार्छा रहते हैं।

वृहत दिवः पर्वत ५.४३.११

यह दीवा का डांडा चंद्रवृन्न में है। यहां उगनेवाली सोम वनस्पति को दिवः शिशु कहते थे।

व्यामापर्वतान् १.३९.३.

इस नाम के दो पर्वत हैं, एक तो व्यासघाट के पास, और दूसरा अल्मोड़ा जिले में। वेद व्यास गढ कुमाऊं में रहे।

दोधत सानु १.८०.५

यह दुधातोली पर्वत है जहां से दूधवति नदी निकलती है। यहां के वृत्रों को जयन करके अर्चन्तु स्वराजं की घोषणा हुई थी।

दस्युं पर्वत ८.७०.११

यहां दस्यु रहते थे। दशौलि प्रांत गढवाल में है, दशौली ग्राम पुंगराऊं में, दशज्यूला पट्टी भी है।

वलस्य सानु ६.३९.६

वल राक्षस जिस भूभाग का स्वामि था उसे वालिकंडार

स्युं ध्रव भी कहते हैं। वलस्य अद्रिवो बिल (१.११ ५) को इन्द्र ने छिन्न भिन्न करके देववशियों की उस्राओं को छुडाया था। यह पट्टी गढवाल के राष्ट्रकूट मे है।

शम्बर गिरि (ऋ ६.२६.५)

इन्द्र ने पर्वत मे रहने वाले शम्बरवशी का हनन किया था क्योंकि वह सेवकरत् प्रजाजनों को कष्ट पहुँचाता था। शम्बरवशि वधान गढवाल मे रहते थे।

मुंजावत पर्वत ऋ १०.३४.१

यह पर्वत सोम के लिये प्रसिद्ध है और दिव पर्वत की एक साखा है। मोजो ऋषि के कारण इसका नाम मौजवत है*। मुंजावत का हिमालय में होना महाभारत भी सिद्ध करता है।

बडित्था पर्वतानां ऋ ५.८४.१

बडेथ के डाण्डे गढवाल मे दो हैं एक चन्द्रकूट मे दूसरा ढागु मे। कवि कह रहा है कि बडेथ के पत्थरों में खड (घास पात) खूब उगता है लेकिन साथ ही पर्वतीय समभूमि मे जनता के लिये अन्न अधिक से अधिक होता है।

पर्शानामः गिरयः ऋ ८.७.३४

साधारण जन इसे वनस्ट पर्वत कहते हैं। इसकी शक्ल

---

* सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो ऋ १०.३४.१ गिरिर्हिमवत पृष्टे मुंजावन् नाम पर्वतः एक प्रसिद्ध वाक्य है।

पर्शा को होने से ही इसका नाम पर्शानाम हुआ है। यह हिमालय के नन्दादेवी शृंग के निकट है।

विवस्व पर्वतान् १.१८७.७

आदि काल में पिता विवस्वत पर्वतों को गया। वहां मधुर अन्न खाने को गया। वैवस्वत जल्प्या से पहिले यमनोत्तरी को कहते थे। यम और वैवस्वत के माना में रहने के कारण माना पर्वत को विवस्व पर्वत् कहने लगे। वेद में हिमालय के हिमान्द्रादिक पर्वतों का वर्णन इसलिये आया है कि प्रलय के समय जब भगदड़ हुई थी तो प्राणियों की प्राण रक्षा हिमालय जैसे पर्वत के ऊंचे शृंगों पर हुई थी। इसी कारण वेद कहता है "यस्येमे हिमवन्तो महित्वा" (ऋ १०, १२१, ४), मरिचि पर्वत, चतुर्भृष्टि शृंग, पर्शा पर्वत खास हिमालय ही में हैं। दिवः पर्वत, मुंजावत पर्वत, शर्यणावत पर्वत, श्याम पर्वत, और दुधातोलि पर्वत हिमालय के ही बाहरी अंग हैं। इन सब पर्वतों का वर्णन ऋग्वेद की रचनाओं में इस लिये आया है कि वहां हमारे वैदिक पूर्वजों का कर्म क्षेत्र था।

वैदिक नदियाँ

माना मानस के २४ सरिताओं के नाम और अन्य छ नदियों के नाम ऋग्वेद में वर्णन किये गये हैं। इनमें से सिंधु, सरस्वति, पुरुष्णि, शर्येणावति और आर्जिकीया का महत्व वैदिक काल में अधिक रहा। इन नदियों के वैदिक नाम और प्रचलित नाम नीचे दिये जाते हैं।—

	वैदिक नाम	प्रचलित नाम	वर्णन विशेष
१	[illegible]	नदाग	
२	नितभा श्वेता श्वेतावरि	धौली–श्वेतगगा	
३	कुभा	मदाकिनी	
४	ग्रमु करसु	पिडर	
५	सिंधु	आलकनन्दा	देव प्रयाग से नीचे सिंधु का प्रचलित नाम गंगा है।
६	सरयु गगा	गगा	



	वैदिक नाम	प्रचलित नाम	वर्णन विशेष
७	पुरीषिणि पुरुष्णि	पूर्विनयार	
८	सरस्वति	सरस्वति	
९	शर्येणावति भृगुदि	शरणा की गाड़	इसको शेराभि कहते हैं।
१०	धन्वा धुपु	परिचमि नयार	
११	अन्शुमति	अनुशाया	
१२	आर्जिकीया (शिसिदिनि)	किमगडी गाड	
१३	परुतयावति	पारता का गधेरा	
१४	कृष्णा	मेदगड (मधुगंगा)	
१५	रोहिणि	न्युणि गाड	
१६	सूयवसीनी–सजू	सरजू	ये पचनद वृहद् मानसखंड में वहती हुई सिंधु की वृद्धि करती हैं।
१७	धेनुमति	गोमति	
१८	इरावति	पूर्वि रामगगा	
१९	मरुद्वृधा	कोशि	
२०	तृष्टामया	परिचमि रामगगा (दूधवति)	

	वैदिक नाम	प्रचलित नाम	वर्णन विशेष
२१	सुषोमा	मल्लाड	देव राष्ट्रेश्वरी पर्वत के नाक पर है। ये दोनों स्रोत उसके उभय पक्षस्थलों का जल एकत्रित करके मत्स गंगा को जन्म देते है।
२२	आर्जिक्यनी		
२३	यमुना	यमुना	
२४	शुतुद्रि	अलका	शुतुद्रि और विपाशा के मेल से सिंधु बनी।
२५	असिक्नि	असि	ये अशक्त गधेरे वाराणसि को जन्म देकर सिंधु नदी मे मिलते हैं।
२६	वितस्ता	वर्णा	
२७	गोमति (देवहुति)	गोमति	लवनों होकर सिंधु में मिलती है।
२८	देव निरव	नीपर (Dnieper)	ये नदिया योरप की है।
२९	देव नेष्टर	निष्टर (Dniester)	
३०	दानवी	डेन्यूब (Danube)	

कुम्भज भी कहलाया। कुम्भज के वंशज कुम्भड़ी ब्राह्मण गढ़वाल के नागपुर प्रांत में पाये जाते हैं।

४ क्रुमु ऋ ५,५३,६॥१०,७५,६

दानपुर के पिण्डारी गलशिर से प्रवाह होने के कारण इसका प्रचलित नाम पिण्डर है। केदारखण्ड में पिंडारका नाम है। कर्ण प्रयाग में अलकनन्दा से सम्बन्ध करती है। इस नदी का वैदिक नाम क्रुमु (कुरमु) हमारा ध्यान कुमाऊ की तरफ आकर्षित करता है। इसका उत्पत्ति स्थान है भी कुमाऊं में यद्यपि यह गढ़वाल में बहती है। कुर्मस्त आयुअजरं (ऋ १०, ५१, ७) कुर्म की आयु जरा रहित है। यह वाक्य क्रुमु नदी पर भी लगता है, क्योंकि नदियो नाबालिका होती है।

५ सिन्धु ऋ ५,५३,६॥१०,७५,१-४-६

सर्व साधारण इसे अलकनन्दा करके पुकारता है और इसके जन्मस्थान को अलकापुरी नाम देता है। इसके दो नाम आलाका (ऋ ६०, ७५, ३५) और शुतद्रि (ऋ ३, ३१, १) हैं। आलाका—नदियों में जिसकी सर्वोच्च प्रतिष्ठा—प्रशंसा है। शुतद्रि—अद्रिसुता।यह विष्णु के स्थान होकर बहती है, इसलिये विष्णुपदि की पदवी धारण करती है। इसको सिन्धुः हिरण्यवर्तनी (ऋ ८, २६, १८) भी कहते हैं क्योंकि इसके रेत को धोकर सुवर्ण निकलता था। एक समय था जब श्रीनगर के धुनारों की आजीविका इसी व्यवसाय से चलती थी और उनका नाम ही धोनेवाला—धुनार हो गया। बद्रिनाथ की सरस्वति-विपाशा की अपेक्षा इसमें जल सदा बहता रहता

है। इसलिये इसको सदानीरा भी कहते थे। "विपाट्छुतुद्रि पयसा जवेते" (ऋ ३, ३३, १) की ऋचा बतला रही है कि विपाशा और शुतुद्रि का संगम पर्वतों में है। वही कवि फिर शुतुद्रि को सिन्धु नाम देकर कहता है कि सिन्धु और विपाशा एक साथ होकर आगे बहती हैं। अतः सिन्धु और शुतुद्रि एक ही नदी के दो नाम हैं। कवि ने वर्षा ऋतु का वर्णन किया है, इस लिये उसने बन्धन मुक्त नदी को विपाशा नाम दिया है जिसको अन्य समय सरस्वती कहते हैं। उसका जल रेतेली कंकरेली भूमि में विलीन होकर सिन्धु में मिलता है। इसीलिये कवि सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना (ऋ ६, ५२, ६) का भी वर्णन करता है।

६ सरयुः (ऋ ५,५३,९) (गंगा)

यह ख्याल किया जाता है कि त्रिविष्टप (तिब्बत) के मानसरोवर का जल इसमें निसृत होता है। जन्हु प्रदेश में बहने से इसी को जान्हवी कहते हैं। इसका वैदिक नाम गंगा भी है (ऋ १०, ७५, ५)। इसका सम्बन्ध अलकनन्दा से देवशर्मा के देवप्रयाग में होता है। पौराणिकों ने गंगा की महत्ता बढ़ा दी है। वैदिक समय में सरस्वति, सरयुः, सिन्धु तीन नदियों की महत्ता अधिक थी और तीनों को वरुणी नाम देकर साबित किया गया है कि ये पर्वतों के वक्षस्थलों का जल बहाती हैं और गर्जना करती हुई पर्वतीय नदियों के सदृश भरर भरर करती हैं १०, ६४, ६ देवप्रयाग में सरस्वति गुप्त मानी गई है। वैदिक समय में यहां वेदाध्ययन होता था।

७ पुरीषिणि ऋ ५,५३,९

चूँकि पुरुष्णि और यमुना एक ही ताल के दोनों तरफ से नय करती हुई, मध्य भू भाग को चन्द्राकार बनाती हुई

कमन्द नौगाऊं में मिल जाती हैं, इसलिये इन दो नदियों को पूर्वी नयार और पश्चिमी नयार कहते हैं। पुनि नयार के किनारे हमारे वैदिक पूर्वजों ने रथों के वहन करने योग्य मार्ग बनाकर पुरुषार्थ दिखलाया तो इसको पुरुषार्थवति और रथवाहिनी भी कहने लगे। परुष्णि, पुरुपति, प्रूपति एक ही नदी के भिन्न नाम हैं। जिस स्थान पर पुरुष्णि और ध्वला का सम्बन्ध होता है वहा से आगे नदी को नयार कहते हैं। नयार और अलकनंदा (गगा) व्यासघाट में मिल जाती है। पौराणिकों ने इस सगम को सप्तसिन्धु तीर्थ नाम के बजाय सप्त सामुद्रिक तीर्थ कहा है। उन्होंने सिन्धु का अर्थ समुद्र किया।

इन्हीं सात मुख्य नदियों के कारण हमारे ही नहीं मानव जाति के मूलस्थान को सप्तसिन्धु (हप्त हिन्दु) कहते हैं। यदि यह कहा जाय कि गढवाल ही सप्तसिन्धु देश है तो जानकार कह सकते हैं कि गढवाल में तो असख्य गाड गगा हैं जिनके गड्ढों के कारण उसको गढवाल कहते हैं। गढवाल में अनगिनत जल स्रोत अवश्य हैं। इस बात को मानते हुये भी वेद इन्हीं मुख्य सप्तसिंधवों को "सप्तापो देवी सुरणा अमृता * कह कर उनकी प्रशसा करता हुआ स्पष्ट करता है कि इनमे भी "नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्ती" ६६ यानी असख्य स्रोत हैं।

८ सरस्वति ऋ १०.७५.५;६.६७ १०

ऋग्वेद सरस्वति को सिन्धुमाता (ऋ ७, ३६, ६) की श्रेष्ठ पदवी देता है। इसका अर्थ यह है कि उसी के मेल से

* ऋ १०.१०४.८

श्रवरुकनन्दा को सिन्धु नाम मिला। सरस्वति ही ने उससे सर्व प्रथम सन्धि की। सरस्वती को सप्तस्वसा सुजुष्टा (६.६१.१०) भी कहते हैं अर्थात् उसकी सात बहिनें सप्तसिन्धु देश की सात मुख्य नदियाँ हैं और वह स्वयं सबसे ज्येष्ठ और प्रतिष्ठित, श्रेष्ठ है। बद्रिवन की सरस्वती में तीन विशेषता हैं। प्रथम वह सर मे सोती रहती है, इसलिये सरस्वती कहलाती है। द्वितीय वह कभी कभी बन्धनों को मानो तोड़ती है तो विपाशा (ऋ ३. ३३. ३) हो जाती है। तृतीय वह पटरानी जैसी रहती है जो बहुत कम बाहर निकलती है। पौराणिकों ने उसे बिन्दुमति नाम दिया है क्योंकि वह बिन्दुसर मे सोती है। बिन्दु का अर्थ है अल्प जल का सरोवर। यह गुण बिन्दुसर और सरस्वती दोनो मे विद्यमान है। सरस्वती को विपाद् (पर्वा रहित) (ऋ ३. ३३. १) कहा है। बन्धन में रहना और बन्धन से मुक्त होना, ये दोनों बातें लागू होती हैं बद्रिनाथ की सरस्वती पर। जिन्हें देखना हो वर्षा मे और जब वर्षा नहीं रहती, देख सकते हैं। सुमति यज्ञियानाम और सुमति नदीनाम् वाक्य सरस्वती पर लगते हैं और इन्हीं के कारण उसे विद्यादेवि और यज्ञ की देवी भी कहते हैं। प्रथम गुरुश्रालय बद्रिनाथ के निकट की सरस्वती के ही तट पर स्थापित हुआ था। इसी कारण बिन्दुमति को सुमति और विद्यादेवी कहा गया। सरस्वति को अंधसि और असूर्या भी कहते थे।

९ शर्यणावति १.७४.१३-१४

इस नदी के तट पर वृत्रासुर का वध पर्वतीय प्रांत में हुआ था। यह शर्यणापर्वत (शर्णा टाप) से निकलती है। यहीं शरणा ग्राम भी है। वर्तमान समय में इसे सेरा

कहते हैं । शर्यणावति का सोमवनस्पति भी प्रसिद्ध था (ऋ ६ ११३. १) । शरणा का पर्वत, शरणा, सेरा चन्द्रकूट (चौन्दकोट) में हैं । सोम तो पर्वतों में उगता है । इसी के निकट आर्जीकीया और सुषोमा भी हैं। इन तीनों नदियों के पार्श्व में जो पर्वतीय भूमि में उगता है, उसका रस इन्द्र को प्रिय और आह्लादजनक लगता था (ऋ ८. ६४ ११)।

१० ध्वस्त्रा ९.५८.३

(पुरीषिणि पर जो व्यारत्न है उसको देखो) । ध्वस्रा में सीरों (अश्वालस्नु में) से बहने वाला स्रोत मिलता है। यह वर्षा ऋतु में उग्र रूप होकर "अतरणत पृथिव्या" (ऋ ४. १६ ७८) घास पात उखाड़कर वहा ले जाता है। इस नदी को सुसर्त्वा (१०.७५ ६) भी कहते थे क्योंकि इसके तट पर शर्याति का स्थान सरासु है।

११ अंशुमति ८.९६.१३-१४

इसी स्रोत पर अत्रि और अनसुया का वैदिक स्थान था यहीं हिम में अत्रि सताया गया था । अंशुमति नागपुर गढ़वाल में है। हिम से सताया जाना हिमाच्छादित पर्वत ही में हो सक्ता है। यह स्थान अत्रि की पत्नि अनसुया के नाम से मशहूर है।

१२ आर्जिकीया ८ ७.२९

इस नदी का वर्णन शर्यणावति के साथ बहुत ऋचाओं में आया है यह इनके निकट सम्बधित होना भी जाहिर करता है। अति उत्तम सोम भी इन्हीं के तट पर उत्पन्न होता है। ये दोनों चन्द्रकूट (चौन्दकोट) की नदियाँ हैं और इन्हीं के

संगम पर वृत्रासुर का शव गिरा था††। महान् मायावी वृत्र को इन्द्र ने स्फूर्ति से नदियों की सन्धि में सुलाया।

१३ पस्त्यावति ८.७.२९*

यह एक क्षुद्र स्रोत है। पास्ता का गधेरा कहलाता है जो बदलपुर गढ़वाल में है। यह पूर्वि नयार में मिलता है।

१४ कृष्णा १.६२.३.

कृष्ण पर्वत का जल इसमें बहता हुआ पूर्विनयार में मिलता है। इसका वर्णन बहुत ऋचाओं में आया है ऋ ७.६३.१३; ऋ १.६२.६; ऋ ८.८७.३ और ऋ ८.७३.१८। कृष्ण पर्वत को काला डांडा कहते हैं। यह नदी रैतपुर होकर दनगल में पुष्पिणी से संगम करती है।

१५ रोहिणि ८.९३.१३

यह लैन्सडौन और रिखणि के बीच बहती है। कृष्ण पर्वत

---

†† इन्द्र महां सिंधुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः। ऋ २.११.९

* महाभारत में वर्णन है कि मत्स देश में राजा कोई नहीं था, ब्राह्मणों का राज्य था। सुषोमा (मत्स), शर्यणावति, आर्जिकीया, पस्त्यावति उस देश की चार मुख्य सरिता हैं जहां मरुत सेना चक्कर लगाती थी। वहां पंचजना ब्राह्मणों का पंचायति राज्य था। सुषोमे शर्यणावत्यार्जिके पस्त्यावति। ययुः निचक्रया नरः। ८.७.२९। ये मरुत विप्र थे जो प्रजा की प्रार्थनाओं को श्रवण कर उनको सुखी करते थे। ८.७.३०।

के दक्षिण ढाल का जल इसमे बहता है। और रिउणि (रोहिणि) ग्राम के पर्वत का जल भी इसी नदी मे बहता है।

१६ सुयवसिनी ७.६६.३

इश नदी के प्रात मे सूया जाति के असुर रहते थे जिनको इन्द्राविष्णु ने यहाँ से भगाया था और वे अल्मोडे जिले के उस प्रात मे बस गये जिसे सोर कहते हैं। सूयवसिनी स्वय बतला रही है कि सूया यहाँ वसते थे। शुम्भगढ भी यहीं है। शुम्भ के ही बन्धु बान्धव सूया थे। सूयवसिनी को सुयमा भी कहते थे और इसकी गणना सरस्वती के साथ की गई है (ऋ ६.८१ ४)। सूयावसिनी के दानवों को होस मे लाने के लिये इन्द्र को सरयु को पार करना पडा था (ऋ ४.३० १८)। इसलिये दानपुर की मुख्य नदी के दो नाम हैं—सूयवसिनी और सरजू। शुंभगढ दानपुर ही का एक प्रसिद्ध ग्राम है। दानपुर का इलाका वर्तमान अल्मोडे जिले का अग है और गढवाल के पूर्व मे है।

१७ धेनुमति ७ ६६.३

अल्मोडे जिले के कत्यूर परगने से प्रवाह मार्ग बनाती हुई बागेश्वर मे दानपुर की सरजू से सगम करती है। वर्तमान समय मे इसे गोमती कहते हैं। इसके तट पर अर्णा (वर्तमान अरणा ग्राम है)। कत्यूर भी गढवाल से पूर्व दिशा मे है। गोमति के निकट गोशालाये रहती थी (ऋ ७.३२ १०)।

१८ इरावति ७ ६६.३

इस नदी को वर्तमान समय मे पूर्वि राम गगा कहते हैं। शुभ पर्वत से तीन नदियां बहती हैं। पिंडर, सूया, शामा। यही शाम है।

१९ मरुद्‌वृधा १०.७५.५

यह कौशिकी-कोशी नदी है कुशिकों की राज्य की वृद्धि करने वाली। यह कुशिक पर्वत के जल को बहाती है। सोमेसर विद्यालय इसी के तट पर था।

२० तृष्टामया १०.७५.६

मानो तृषित होकर भिक्षाटन के लिए भिक्षु शायण को जाती है। दोधत सानु (दुधातोली) का जल बहता है इसमें ऊपर वर्णित पाँच नदियाँ मानस खंड में हैं।

२१ यमुना १०.७५.५

यम और यमी का जन्म यमनोत्तर प्रान्त में हुआ था। गंगा से इलाहाबाद में संगम।

२२ सुषोमा २३ आर्जिकीया। १०.७५.५

इन दो स्रोतों के जल से मत्सजालनद्या नदी बनी है जिसको मछलाड़ कहते हैं। इसीमें शुगुण्डि और कीमिदिनी का जल येक साथ बहता है।

२४ शुतुद्रि २०.७५.५

अलका के स्रोत को शुतुद्रि कहते थे। वर्तमान समय में इस भूमि को अलकापुरी कहते हैं।

निचान देश की नदियां

२५ असिक्नी २६ वितस्ता

इनके नाम बतलाते हैं कि अशक्ति है और तारण शक्ति इनकी बीत गई है।

डूबने से या नाश होने से बचाया (ऋ १.१५४.१) उत्तर में स्थित हिमगिरि से अभिप्राय है। शतपथ के उत्तरगिरि का भी यही अर्थ है।

राजा रुद्र ७.४६.।२३

गढ़वाल में रुद्रप्रयाग और रुद्रनाथ पर्वत राजा रुद्र का स्मरण आज भी दिला रहे हैं। वे वैद्य भी थे। उनके राज्य में सहस्त्रों उत्तम भेषज थे† क्योंकि उनके केदार प्रांत में उत्तम लाभकारी औषधियां उत्पन्न होती हैं। उनके स्मारक पंच केदार गढ़वाल में हैं। रुद्र गाथपति (ऋ १.४३.४) थे अर्थात् संगीत शास्त्र में प्रवीण ही नहीं थे, उसको जन्म देने वाले थे। गढ़वाल में उनका डमरू अब भी प्रसिद्ध है। रुद्र शरीरधारि देववंशि राजा थे। अतः वेद उनके गुणों का वर्णन करता है कि वे तो स्थिर धन्वा साहमना, क्षिप्रे षवे, तिग्मायुधि हैं (ऋ १.४६.१) रुद्र की प्रजा नागवंशि क्षत्रियों की थी॥, इस लिए उनके राज्य का नाम नागपुर हो गया। इन्होंने मरुत सेना को जन्म दिया तो इनको पितर्मरुतां भी कहा गया। रुद्रं जलापभेषजम् (ऋ १.४३.४) बतला रहा है कि रुद्र ने जल चिकित्सा को जन्म दिया था। सम्भवतः इसके कारण स्नान करने की श्रद्धा और महत्ता वृद्धि को प्राप्त हो गई॥

दिवस्पति इन्द्र ऋ ८.९८.४.६

इन्द्र ने देवराष्ट्र की स्थापना की थी। द्वीराड़ि ग्राम इसकी तरफ संकेत कर रहा है। यह स्थान चन्द्रकूट के दिवः पर्वत की धार पर है। वहीं देवराष्ट्रेश्वरी का भी स्थान है जिसका वर्णन केदार खण्ड में भी है। इन्द्र ने जब दस्यु जाति का

---

† सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा ऋ ७.४६.३

हनन करके उनकी प्राचीन बस्तियों को तोड़ फोड़ा और देवराष्ट्र की स्थापना की तो नृमेध ऋषि ने इन्द्र को पर्तिर्दिवः की उपाधि से विभूषित किया †। दिवः पर्वत, देवस्थल, शर्यणावत पर्वत और मुंजावत पर्वत चन्द्रकूट प्रांत के मुख्य पर्वत हैं। इन्द्र को धृष्णु भी कहते थे।

येक समय में तीन ही श्रेष्ट पुरुष माने जाते थे जिनका इस भूमण्डल पर उच्च अधिकार था ये थे रुद्र, विष्णु और इन्द्र ॥ इन्द्र चन्द्रपुर के राजा विष्णु के वस में रहता था × ।

पिटीनस् ऋ ६.२६.६

गढ़वाल में यह दस्तूर प्राचीनकाल से चला आता है कि श्रेष्ट पुरुषों को पिठाई लगाई जाय। उनको टीका भेट दिया जात है। राजा राहु येसे ही श्रेष्ट पुरुषों में थे, इसलिये उनका नाम ही पठिनी कहते कहते प्रसिद्ध हो गया और उनके स्थान का नाम मैठाणि जो गढ़वाल के राष्ट्रकूट प्रांत में है। हो सक्ता है कि उनका स्वभाव उग्र रहा हो और आज्ञा न मानने वालों को ये पीटते या पिटाते रहे हों, परन्तु थे श्रेष्ट पुरुष अवश्य थे और उन्होंने ६० सहस्र सेना देकर इन्द्र की सहायता की थी। सम्भव है उनके उग्र कर्मों की वार्ताओं को सुनकर ही पौराणिकों ने उनको राक्षस कहा। उनके साथ उनका केतु (ध्वजा) भी फहराता रहता था। केतु नाम का ऋषि भी था (१०.१२६)। उसकी प्रजा भी थी। इनको किनव

---

† त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि। हन्ता दस्योमनोवृधः पर्तिर्दिवः। ऋ ८.९८.६

× पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्व। ऋ ६.३६.४

२७ गोमति

लखनऊ होकर बहने वाली नदी को पीलिभीत में देउवा कहते हैं। यही वैदिक देवहुति है। हेमंत ऋतु में हिरण्यस्तूप यहाँ आया करता तो यह प्रांत ही पीलीभीत कहलाया। चक्र तीर्थ भी यहीं है। शांख्य शास्त्र को जन्म देने वाला शाख्य ऋषि यहीं रहता। उसको जननी देवहुति के नाम को देउवा चिरस्मर्णीय किये हुये है। निचान देश में परेयिवासियों के साथ देवहुति यहाँ आइ तो उसकी स्वरित के लिये प्रार्थना की गई थी। १०. ६३.११ वह पंचजना ऋपियों से यज्ञ कराति थी। गोजाता-गोमातर कपक भी यज्ञ में भाग लेते थे १० ५३.३ ५.

२८ देव निरप

भारतियों ने योरप के दलदलों से इसका सिरजन किया।

२९ देव नेष्टर

इसका नामकरण भारतियों ने किया जब उन्होंने इसके तट पर अपने नेष्ट बनाये।

३० डेन्यूब-दानवी

इस नदी के प्रदेश में अपनी दानशीलता से गोमातर पृश्निमातरों ने हंग्रि अग्रि अगारा जैसे अधिवासियों को अपने अधीन किया।

वैदिक पुरुषों के स्थान

इस सम्बन्ध में उन महापुरुषों से सम्बधित भूगोलिक नाम नीचे दिये जाते हैं जिन्होंने पद्य रचना नहीं की है, वल्के जिनकी प्रशंसा के गीत वेद में पाये जाते हैं। वैदिक कवियों

ने मूल स्थान के नदी पर्वतों का ही वर्णन नहीं किया है बल्कि अपने समय के महान् आत्माओं की श्रुतियों की रचना करके, उनका गुण-गान करके वैदिक इतिहास पर भी प्रकाश डाला है। ये महापुरुष अध्यक्ष, राजा सेनानी, अश्विनी, मरुत, वैद्य इत्यादि की श्रेणि के हैं।

विष्णु अधिष्ठाता ७.९९.१००; १.१५४.१५६

इनका जन्म स्थान वही भूमि है जहां इनका स्मारक बद्रिनाथ की महिमा का द्योतक है। उसी के निकट अलकनन्दा में उष्ण जल मिलने से विष्णजल रहता है। इसी कारण उनका नाम विष्णु पड़ा। उष्ण जल स्रोत और अलकनन्दा के संगम पर उन्होंने जलस्थम्भ विद्या का अभ्यास किया था और जलशायी भी कहलाये। जलस्थम्भ विद्या की आधार शिला इन्होंने ही डाली। चन्द्रपुर के राजा करके भी इनका वर्णन किया गया है* ये जब कहीं गमन करते थे तो अश्वारोही सेना इनके आगे रहती थी। चन्द्रपुर के निकट आद्यबद्रि (आदबद्रि) में सबसे प्रथम सर्व साधारण से इनका परिचय हुआ वहीं उनका प्रथम स्मारक भी स्थापित हुआ। गढ़वाल में इनके पांच स्मारक हैं जो पंचबद्रि कहलाते हैं। विष्णु की प्रशंसा में दीर्घतमा ऋषि ने कहा है कि प्रलय (हिमवर्षण) में उन्होंने उत्तर में स्थित को थामा अर्थात्

*पर्वो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चंद्रस्य रायः। ऋ ७.१००.२. जिस तरह प्रातःकाल की भूरि किर्णें सविता के आगमन का परिचय देती है, उसी तरह अश्वारोही सेना चंद्रपुर के राजा की सवारी के आने की सूचना देती है।

(ग)—तेरे प्रयत्नों से मगभाव से योग देकर धृष्णु ने यत्न से तेरे शत्रुओं को भगाया। ††

(घ)—साहसी जोशीले धृष्णु ने संग्राम में स्थिर रहकर यातुधानों को भगाया। ×

धृष्णु देवस्थल पर्वत पर रहता था। उसका ग्राम उसके समय के पश्चात् मजुकुला स्रोत के कारण धेरा पड़ने से टूट फूट गया तो उसके वंशज धृष्णव धृष्माण उस स्थान को चले गये जिसे धसाणि ग्राम कहते हैं। यह गाँव गढ़वाल की पिंगलापाखा पट्टी में है। धृष्णुवंशी प्रजा से कर वसूल करते थे (ऋ ६.४७.२)।

अश्विनौ १.३४.१.११२

अश्वारोहियों की प्रशंसा लगभग ५०० ऋचाओं में वर्णित है। इनकी तीन कक्षा थीं, नासत्या और दस्रा, त्रिस्रा इनके वंशजों को सावलि निष्ट, अस्वाल और घुर्दोडा कहते हैं। इनकी तीन जागीरों की पट्टियाँ सावलि, आस्वालस्यु और धुड्दोड्स्यु हैं। अश्विनी हिमालय प्रदेश के रहने वाले थे*। इनको त्रिअश्विना कहते थे १ ३४ ५ ६।

---

†† तव प्रनेन युज्येन सख्या, वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ऋ ६.२१.७

× ओजियो धृष्णो स्थिरमा तनुष्य, मा त्वा दमन् यातुधाना दुर्वोः ऋ १०.१२०.४

*युवोहियंत्रं हिम्येव वाससोऽभ्यामंसेन्या भवतं मनीषिभिः। ऋ १.३४.१

मरुत सेना ८.२०.१७ । ५.५२ से ५.६१

मरने मारने में समर्थ मरुतों को जन्म देने वाले राजा रुद्र हैं। इसलिये इनको कहते हैं कि "रुद्र के पुत्र तो देवलोक में बसते हैं" † हमारे पूर्वज अपने को देव कहते थे और अपने मूल स्थान को दिवः। इनके वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन वेद की ५०० ऋचाओं में किया गया है। इन्हीं के वंशज मरा-मीर्य हैं। ये घोर पर्वता होते थे। मरा (महर-महरा) जाति के लोग गढ़वाल-कुमाऊं में अब भी पाये जाते हैं। मरुत पर्वतीय देश के रहने वाले थे ††। देश में इनके वंशज मुराऊ हैं। एयया मरुत प्रसिद्ध थे।

भेषज १.११६.१५

अश्वारोही सेना और मरुत सेना में भी अश्वीभेषज और मरुतभेषजों को टोलियाँ होती थीं। राणि विश्पला की जाँघ टूटने पर यह विला विलम्ब ठीक कर दी गई थी। विश्पला दूसरे ही दिन रणांगण में चली गई और विजयी होकर आई। इनके वंशज गढ़वाल के बुटोला रावत हैं। ये सहस्रों की संख्या में प्रजा के रोगों को दूर करने के लिये देश में भ्रमण किया करते थे। इनके वंशज मिलम में भी हैं।

इडा १.३१.११

महारानि इडा को वेद मनुष्य शासनी की पदवी देकर, भारत के नाम को पवित्र करने वाली तीन देवियों में गणना

---

† रुद्रस्य सूनवो दिवो वसंति ऋ ८.२०.१७

†† त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे। ऋ ८. ९४.१२

करता है। ये तीन देवियाँ हैं—इडा, सरस्वति और भारति (ऋ ६.५.८)।

इडा के नाम के स्थान गढवाल-कुमाऊँ में अनेक हैं। इडा मवालस्यु, इड़ा मौदाडस्युं, इड़गड नदी चन्द्रकूट में है। इडवालस्यु उसके बन्धु बाधवों की जागीर है। उसका स्वतत्र राज्य भी था जिसमे इडियाकोट नाम का दुर्ग अब भी प्रसिद्ध है। इडकोट नाम का स्थान पूर्वि कुमाऊँ मे है। इडा ग्राम पालि पछाऊँ मे भी है। दक्षिण पूर्वि गढवाल मे इडा के गीत गाये जाते हैं। वह सुवीरा थी (ऋ ६ ६१.१७)।

राजा खेल १.११६.१५

खेला और खार्स्यु नाम के स्थान गढवाल-कुमाऊँ मे मिलते हैं। खेल और उनकी पत्नि विश्पला ने इन्दु नदी के पश्चिम के उन इलाकों के उपद्रवी लुटेरे डाकुओं से युद्ध लडे जिनको आप्रीता (आफ्रीदी) कहते हैं। इस सग्राम मे खेल की पत्नि विश्पला ऐसी सकटावस्था मे फँसि कि उसकी जघा पक्षि के पख के समान छिद गई अर्थात् उखड गई थी। ऐसी अवस्था मे सेना के साथ जो भेषज थे उन्होंने शीघ्र ही उसको आयस-इस्पात की जघा पहिना कर ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये सग्राम मे आगे बढने के लिये भेज दिया और वह शत्रुओं से धन लूट कर लौटी। यह अद्भुत चमत्कार हिमालय की अमूल्य औषधियों के बल पर हो सका। जो इलाका उन्होंने विजय किया वहाँ पृश्निमातरो ने जगल काटकर खेती भी की। इस कारण वहाँ के जकाखेल, जगनखेल, इशाखेल इत्यादि नाम आज भी खेल की याद दिलाते हैं।

इस सभ्यता के युग मे तो इतिहास को बनाने वाले अपनी

दिनचर्या भी लिखने लगे हैं जिससे इतिहास लिखने वालों का कार्य कुछ हल्का अवश्य हो जाता है। अब उन वैदिक ऋषियों के स्थानों का वर्णन किया जाता है जिनकी रचनायें हमको वैदिक इतिहास की झांकि देखने को उद्यत करती हैं। इनके स्थान जिस देश में मिलेंगे वही प्रांत हिमालय प्रदेश का मर्त्यामन्यु (हफ्तहिन्दु) माना जा सकेगा। प्रत्येक कवि अपने देश का गुणगान करके उसका प्रेम पुजारी बन जाता है और अपने एतिहासिक रत्नों को देवत्व प्रदान करके ही सांस लेता है॥



वैदिक ऋषियों की वस्तियां

ऋषि स्थानों की वृहद् भूमि रहती थी। यह भूमि सोमवनस्पति के वृक्षों से घिरी रहती थी जो धारिदार और कंटीले होते हैं। कहीं कहीं पत्थर की दीवालें भी घेरे रहती थीं। उस घेरे के भीतर गोशाला, पाठशाला, नृत्यशाला यज्ञ मंडप और कृषि के लिये भूमि भी रहती थी। अत्रि और वसिष्ठ के पुरों में शतद्वार छात्रालय थे।

मौंजवान् १०.३४

मुंजावत पर्वत मौंजो ऋषि का ही चिरकाल से स्मरण कराता है। इसी पर्वत से मधुकुल्या स्रोत निकलता है जिसका निर्वाण केदार खण्ड ग्रंथ में भी मिलता है। इसी स्रोत से मूल लेजाकर तृषित गोतम को जलपान का सुभीता दिया

गया था। उसकी गायों के लिये पुष्कर बनाया गया था। मौदाड़ि (मौदाडि) मौदाडस्यु उसीके वशज मोदाडों का भूमि है। मुजावत पर्वत मोडाडी मज्यूलि चन्द्रकूट के अन्तरगत है। अश्व कितव की प्रशंसा इस सूक्त में हैं। इसीको पीटनस्, राहुकेतु भी कहते है।

अगस्तमुनि नाम का स्थान मदाकिनी के तट पर उत्तर गढवाल में है। अगस्त को कुम्भज भी कहते हैं। कुम्भडी ब्राह्मण उसी इलाके में रहते हैं। कुभा पर जो विवरण लिखा गया है उसे भी देखो। अगस्त के स्थान से गुजरते हुये नासत्या अपनी सन्तान को भी आनन्द से अपने गृह को लेगया १ १८४ ५।

अग्रय धिष्णय ६ १०६

धृष्णु के वशज आग्नेय अस्त्रों का सचालन करते थे तो अग्नयधिष्णाय भी कहलाने लगे। सामवेद के समय धृष्माणा शब्द का रूपान्तर धस्माना हो गया था। धस्मानों की बस्ति को धस्माणि कहते हैं। धृष्णु पर विवरण देखो।

ऐश्वरा ६,१०६

एगाशर में देवेश्वर का मदिर है। अब उसे एकेश्वर कहते हैं। यह स्थान चन्द्रकूट के दूवेश्थल पर्वत (देवता का डाण्डा) पर हैं।

स्थौर अग्नियुत १० ११६

स्थौर ऋषि अपने वशज स्थौर थारुओं की रक्षा के लिये इन्द्र से प्रार्थना की है। थारू जाति का मूल स्थान स्थरालि (थरालि) वधान में है। इन्द्राविष्णु ने थरु लोक की रक्षार्थ

को बुध्याचल भी कहते हैं। वेद में उस बुध्न भी इसीको कहा गया हो, क्योंकि यह पर्वतीय देश है।

वम्रिराङेय ५.१९.१-५

इस ऋषि का नाम हमारे ध्यान को गढ़वाली बोली के वम्री वम्रो शब्द की तरफ ले जाता है। इसकी रचना में भी वम्रेः वम्रि. शब्द आये हैं*। गढ़वाल में वम्रि या वम्रो कहते हैं मकान की नीचे की मजिल को। स्त्रियां नीचे के ही मजिल में प्रसव काल से नामकर्ण के समय तक रहती हैं। यह ऋषि भी सम्भवतः एक ही मजिल के मकान में रहता था और यही कारण उसके वम्रिः नाम का है क्योंकि ऋषियों के बहुधा द्वि मंजिल मकान होते थे। वह कहता है कि वम्रि तो वम्रि में रहने वाले नव जात शिशु की तरह चकित रहता है, देखता ही रहता है। लेकिन बालक तो माता की गोदि में उपस्थित होकर चेष्टा करने लग जाता है। वह आगे कहता है कि कर्मशील लोग तो सतत. परिश्रम करके चिंतित होकर धन कमाते और उसकी रक्षा करते हैं, तब ही दृढ़ पुरियों में बस सकते हैं। वम्रि ने प्रकट किया है कि वह घासफूस के झोपड़े में जंगल में रहा। उसका पत्थर चिना मकान भी नहीं है। उसका स्थान बुखाराल था। वह गढ़वाल में रहता था, उसकी भाषा और नाम संकेत कर रहे हैं। शब्द परिवर्तन बतला रहा है कि बम्भि, वम्रि-उम्रि, वबरी, बबराय का मूल एक ही है। बबराय जाति पंजाब में है। महान् नदियों का जल भी वम्रिवास होता है अर्थात् नीचे ही नीचे बहता है

---

*अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रे र्वव्रिश्चिकेत।उपस्थे मातुर्वि चेष्टः। ऋ५.१९.१

(ऋ ६.६१.२२) । जल नीचे ही रहता है इसलिये वन्निवांस है।

शासो भारद्वाजः १०.१५२.१-५

शास ऋषि का शासों नाम का ग्राम गढ़वाल की पट्टी मवालस्युँ में है। इसकी पद्य रचना में बतलाया गया है कि शास तो अपने देश में महान् है और वह अपने अमित्रों को आश्चर्यकारी तरीकों से खा जाता है[1]। उसका मित्र तो न मारा जा सकता और न पराजित किया जाता है[1]। शासने मन्यु की भी प्रशंसा की है। मन्यु का मनकोट भी मवालस्युं में है। शास और मन्यु समकालीन रहे होंगे। मालूम होता है कि शास को कुछ राज्याधिकार प्राप्त था जिसके कारण उसके मित्र निर्भय रहते थे।

मन्युः १०.८३-८४

मन्यु मवालस्युं गढ़वाल का इन्द्र था। उसका मुख्य स्थान उसी पट्टी में मनकोट था। उसने वुध्याचल के दस्युओं को पराजित किया× तो उसके विरोचित कार्यों के कारण उसे जागीर दी गई जो उसके नाम का स्मरण अब भि दिलाती है। उसकी जागीर को कहते हैं मन्यारस्यु। उसके वंशज मन्यारि अब भी उस पट्टी के थोकदार हैं। मन्युरिन्द्र

---

[1]शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः। न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन॥ ऋ१०.१५२.१

× हनाव दस्यूरुत बोध्यापे। ऋ १०.८३.६ दंसने वाले शत्रुओं का हनन करो।

की प्रशंसा में कहा है कि वह तो देववंशि श्रेष्ठ पुरुष है, यज्ञ करने वाला होता है, वरुण जातवेदा है और उसकी मननशील प्रजा उसकी स्तुति करती है— वह जोपीला कर्मयोगी प्रजा की रक्षा करे× ×

सुतम्भर आत्रेयः ५०.११-१४

सुतम्भर सुन्दर पर्वत को सुन्दरई में रहता था। वह अग्नि पूजक था। उसने वैष्णव और शैवियों की शिकायत की है कि ये अशिवा हो गये हैं और सरल चित्त वालों को असत् मार्गों का उपदेश करके अपने आप भी नाश को प्राप्त होते हैं॥।

विश्ववारा आत्रेयी ५.२८ ५-६

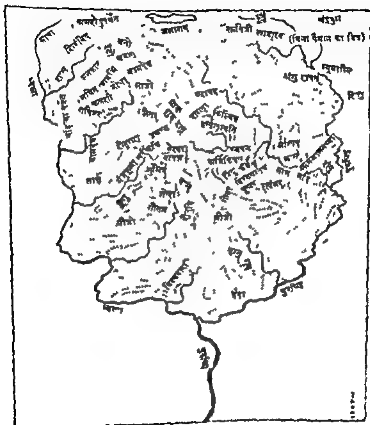
• विश्ववारा ऋषिका थी। वह यज्ञ करती थी। वह अतिथि सत्कार करता थी। उसका स्थान बसुर पट्टी मौंदाडस्यु चन्द्रकूट में है। कवि के वंशज बसुर में रहते हैं।

कवि भार्गव ९.४७-४९

कवि ऋषि कविस्थलि (कनतोली) में रहता था, लेकिन वह विश्ववारा के स्थान को चला गया और वहाँ उसकी

× × मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः। मन्युं विश ईडते मानुषीर्याः पाहिनो मन्यो तपसा सजोषाः॥ ऋ १०.८३.२।

॥सखायस्ते विपुणा अग्न एते शिवासः संतो अशिवा अभुवन्। अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजनानि ब्रुवंतः। ऋ ५०.१२.५ विपुणा=विष्णुव।



सन्तानोत्पत्ति हुई। उसके वंशज कवित-श्रयण (कवत्याण) हैं। उसकी रचनाओं से स्पष्ट है कि उसके प्रांत में वृष्टिकम होती थी। यह वर्णन चन्द्रकूट पर अधिक लागू होता है जिसमें कविस्थलि और वस्यूर दोनों स्थित हैं। कविस्थलि के दोनों तरफ जल स्रोत हैं तो सही लेकिन उचाकोट के उचथ्य की ऊंची भावनाओं के कारण और विश्वावारा से आकर्षित होकर, यपि ऋषि वस्यूर को चला गया। कविस्थलि और उचथ्यकूट मजुकूला के समीप हैं। उचथ्यकूट से एक मील ऊपर पातल ग्राम है। यह भी मंजुकूला के तट पर है।

उचथ्य ६.५०-५२

उचथ्य उचथ्यकूट (उचाकोट) में रहता था। उसने वर्णन किया है कि दिवः पर्वत (देवता का डाण्डा) के उत्तम सोम से बने पीयूष को इन्द्र के लिये अभिषुत करो। देवता का डाण्डा मुंजावत पर्वत का ही एक अंग है जिसके सोम की प्रशंसा सायणचार्य ने भी की है।

अरिष्टनेमि

अरिष्ट को उड़ानेवाले को अरिष्टनेमि कहते हैं। नेमि शब्द नमसा से संबंध रखता है जिसका अर्थ होता है भक्षण। अरिष्ट को दूर करने के लिये दान दिया जाता था, जो उसे ग्रहण करते थे उनको अरिष्टनेमि कहते थे। "इंद्रो पातल्यो ददतां शरीतो अरिष्टनेमे अभि नः गचस्व।" ३.५३.१७। इंद्र ने पातल ग्राम शिर्ति में अरिष्टनेमियों को दिया था और उन्होंने सहयोग किया।

तार्त्यः १.१७८.१

अरिष्टनेमि के वटवाड़ में रहने के कारण से उसे तार्क्ष्य

(वलशालि) भी कहते थे। वलवाड ग्राम मजुखूला के दाहिने पार्श्व मे है। जो अरिष्ट को खाने मे समर्थ हो वह वलशालि ही नहीं, प्रतिहिंसक भी कहा जा सकता है। इसलिये तार्क्ष्य की सहायता की आवश्यकता समझि जाति थी अपने कल्याण के लियेॐ।

अमहीयु ९.६१.१-३०

अमहीयु अमहीयु पर्वत पर रहता था। यह चन्द्रकूट पर्वत की एक शाखा है और सर्व साधारण उसे अमेली का डाण्डा कहते है। इस ऋषि ने वर्णन किया है कि सोम वनस्पति सिन्धु मे उत्पन्न होती है×। कवि ने यह दर्शाया है कि जिस देश मे सिन्धु (अलकनन्दा) वहती है वही देश सोम का भी जन्मस्थान है। अमहीयु के वंश में उत्पन्न हुआ वह भी यहीं रहता रहा होगा (ऋ १० ११८)।

कुत्स १.९४-९८

कुत्स के नाम का कुक्स ग्राम गढवाल की अरवालस्यु पट्टी मे है। इसने अपनी पद्य रचना मे यह दर्शाया है कि इन्द्र मूलस्थान से पश्चिम दिशाओं के राजाओं को उपदेश देता था कि सत्मार्गों का अनुसरण करते हुये प्रजाजनों पर शासन करें। देववशियों ने समद्वारों से मुख्यत. पश्चिमी देशों मे उपनिवेशों की स्थापना करना आरम्भ किया। उस समय बिजनोर से बगदेश तक और तराई-भावर से विन्ध्या की मध्य भूमि जलनिमग्न थी।

ॐस्वस्तये तादर्क्ष्यमिहा हुवेम। ऋ १०.१७८.१

× दशक्षियो मृजंति सिन्धुमातरम् ऋ ९ ६१.७

कक्षिवान् १.११६-११६

कक्षिवान् ने अश्विनी अश्वारोहियों की प्रशंसा में पद्य रचना की। इसका जन्म स्थान कुरु-कुक्स होने की अधिक संभावना है क्योंकि वह अश्वालों की जागीर में निवास करता था और यह वाजिब ही था कि वह उनकी प्रशंसा पद्यों में करता।

कृष्ण आंगरिस ७.८५-८७

कृष्ण नाम के कृष्ण विश्व और कृष्ण शुस्न भी हुये हैं। कृष्ण पर्वत (कालों का डाण्डा) गढ़वाल में है। इसी पर्वत पर काली जाति के ब्राह्मणों की बस्तियाँ हैं। पंजाब और दक्षिण में भी पाये जाते हैं। कृष्ण नाम के ऋषियों ने अश्विनी की स्तुतियाँ की हैं।

नोधा ८.८८।७.५८-६४

नोधा गोतम का वंशज। वह चन्द्रकूट के नौधण (नोधा-श्रयण) में रहता था। उसने मरुतों को रुद्रसनु और रुद्र मर्या कहकर बतलाया है कि राजा रुद्र ने ही मरुत सेना को जन्म दिया है। इसकी रचनाओं में अनश्रुत वाक्य आये हैं:—

राजा कृष्टीनामसि मानुषीणाः युधादेवेभ्यो वरिवश्चकर्थः

स्वराडिन्द्रो दम का विश्वमूर्तेः पतिं न पत्नीरुशतीरुशान्त।

जेता १.११

जेता ऋषि जेतार थे और मधुर छन्दों में पद्य रचना करने से मधुछन्दा भी कहलाये। ये जैतोलि (जेतास्थली) में रहते थे। इनकी वीरता के कारण इनको जैंतोलसु दी गई थी। इनके ओज दिलाने पर इन्द्र ने वृत्रासुर को वध करने

की योजना बनाई और सफलता प्राप्त की। जेता ही ने सर्व प्रथम मूल स्थान को सिन्धु (सिन्धु देश) नाम दिया (ऋ ६.११.६) इनके वंशज जैंतोला राजपूत है। जैंतोलगांव-अश्वालस्युं में है। ये लोग निर्बल होने पर जैंतोलस्युं से अन्यत्र चले गये।

जुहू १०.१०६

जुहू ऋषि जुवई में रहता था। इसने ब्रह्मजाया के विषय उसके चरित्र पर पद्य रचना की है और साबित किया है कि वैदिक समय की सप्तसदस्यों की न्याय सभा के समक्ष राजा को भी शिर झुकाना पड़ता था। जुवई ग्राम पुरुष्णि (पूर्विनयार) के तट पर है।

शंयु ६.४४-४६

शंयु ऋषि बृहस्पति का वंशज है। इसके ऋषि स्थान में घोड़दौड़ की विस्तृत भूमि थी अब वहाँ सिंचाई के खेत हो गये है। उसके स्थान का नाम शंयुकुटी (शंगलाकोटी)। उसने वेन्य की प्रशंसा की है (ऋ ६.४४.८)। वेन्य सम्भवत वेनो है (ऋ १०.१२३) जो देवता करके भी माना जाता है।

वेनो १०.१२३

वेनो ऋषि भृगुवंशि है। इसके नाम का विनसर ग्राम मवालस्युं मे है। इसकी पूजा के दो मन्दिर भी हैं। एक मवालस्युं में और दूसरा चौयान में। इसके नाम की विनौ-नदि भी है। इसकी महिमा का कारण यह है कि वह मनु को देव समाज में लाया (ऋ ८.६३.१)।

इटो १०.१७१ *

इटो और वेनो के स्थान के निकट ही हैं। इटो के स्थान को इटोसी कहते हैं। ये दोनों एक ही वंश के हैं। इटो ने वेनो की महिमा गाई है और उसे वुध्नाय वेन्यम् कहा जिससे स्पष्ट है कि जनता में उसकी मान्यता थी और उसको मूल पुरुष जैसा मानते थे। यही कारण है उसकी मान्यता का और उसके स्मारक स्थापित करने का। उसकी रचना में चन्द्र-कूट को "सोमिनो गृहम्" कहा गया है। (ऋ १०.१७१.२)। इटो वेनों दोनों चन्द्रकूट प्रांत के निवासी थे।

उत्किल ३.१५-१६

उत्किल का स्थान उसीके नाम से ग्रंदकिल हो गया है। यह देवस्थल पर्वत के दाहिने पक्ष पर स्थित है और गुरुराष्ट्र के समीप है। इसीके वंश में मारकण्डेय और हिमशाव हुये हैं। यह कहता है कि पायु तो प्रथम यज्ञ का नेता था*। उत्किल स्वयं भी अग्नि पूजक था॥

पायु ६.७५;१०.८७

यातुधानों ने इसे बहुत कष्ट पहुँचाया। तब उसने रक्षोहा अग्नि यज्ञ किये। पायु पौड़ी में रहता था। इसके पडोसि चमुरि, धनी, मृग राक्षस थे। इनके दुष्ट बर्ताव से पायु के वंशज मामा गृह को चल गये और पायव मामतेय कहलाये। वर्तमान समय में इनको ममगाई कहते हैं। इन तीन राक्षसों का वर्णन आगे किया जायगा। मामकाना ममगाई देवासुर संग्राम में लड़ने को इन्द्र की देव सेना में सामिल थे।

---

*यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोः ऋ ३.३५.४

शर्याती १०.६२

पुराणों में शर्याती और उसकी पुत्री सुकन्या का वर्णन तो है लेकिन केदार खण्ड में जो उसकी कथा दी गई है उससे विदित होता है कि पश्चिमि नयार (ध्वस्वा) के तटवर्ति सरासु मे वह रहता था और चमनाव (च्यवन नाव) पर्वत के निवासी च्यवन ऋषि को उसकी कन्या व्याही गई थी। शर्याती पुत्रहीन होने से उसने च्यवन से सहायता ली और चयनाव के निकट की शर्यणावति पर पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया। शर्यणा के कारण भी उसको शर्याती का नाम मिलना सम्भव है। उसने विश्वेदेवाओं की स्तुति की है। सरासु से शर्यणा सीधे ६।७ मील की दूरी पर है।

च्यवन १०.१६

च्यवन की रचना आवर्तन पर है अर्थात स्वदेश परदेश मे बसना और फिर लौटकर आना। इस सूक्त मे मूल स्थान से चारों दिशाओं की भूमि मे उपनिवेशों की स्थापना का वर्णन है।* च्यवन के स्थान का वर्णन शर्याति के सम्बन्ध में हो चुका है। च्यवन तो धृष्णु और सुमित्र जैसा शूर वीर था। उसने चीन की तरफ राज्याधिकार प्राप्त किया था और सुमित्र ने सुमात्रा मे। च्यवन के वशज च्यवन-चौहान हैं। च्यवन का स्थान आरोग्यवर्धक जल कुण्ड के लिये प्रसिद्ध था। गढ़वाल मे जल कुण्ड को नाव कहते है। च्यवन-नाव चमनाव दूसरा स्थान था॥

---

*आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय। भूम्य-चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना निवर्तय। ऋ १०.१६.८

मथित १०.१६

मथण, मैठाणा नाम के ग्राम में गढवाल में मौजूद हैं। मथण चन्द्रकूट में भी है। मिथुनाओं ने क्रिमगडी के यातु धानों को भस्म करने के प्रयत्न किये थे (ऋ १०.८७ ७४)।

शिरिम्बिठो १०.११५

शिरिम्बिठ चन्द्रकूट शिरण्ड ग्राम का निवासी था। उनकी पद्य रचना से विदित होता है कि चन्द्रकूट में दुर्भिक्ष होते थे। वर्षा कम होने से दुर्भिक्ष वहाँ अब भि होते ही रहते हैं। यह कहता है कि घासपात के अकुरों के नाश होने से इधर उधर से चेतावनी-ताडना मिल रही है दुर्भिक्ष को देखने की (ऋ१०.१५५.२) यह यह भी बतला रहा है कि हमारे पूर्वजों ने दणदणाहट करने वाली तोपें बना ली थीं जिनसे इन्द्र के सभी शत्रु वर्षा के बूँद बूँद जैसे नाश होकर पृथ्वी पर सुलाये जाते थे (ऋ १० १५५ ४)।

ऐरम्मद १०.१४६

ऐरम्वद ऐरोलि में रहता था। उसके समय में अरण्य अधिक होने से, उसने अरण्य पर गीतों की रचना की तो उसका नाम ही ऐरम्वद हो गया क्योंकि वह अरण्य सम्बधि गीत बोलता रहता था। उसने पहिलि दो ऋचाओं में वनाग्नि का वर्णन किया है कि वह तो वनों में प्रवेश करके नाश ही करती है और वनों से घिरे जो ग्राम रहते हैं उनकी भी कुछ नहीं पूछती और न वह भय को जानती है। वह अग्नि तो बलशालि वृषभ की तरह जिसे भी पाती है उसीसे सम्बन्ध कर लेती है। जिनका बल कभी नहीं घटता, उनकी तरह अरण्यों में धावन करती हुई महान् हो जाती है। यह सानित कर रहा है कि उसका निवास स्थान जंगल में था।

मृडीको १०.१५०

मृडिको मुड्याप ग्राम का निवासी था। हो सकता है कि मृडिक, का अपभ्रंश मुडक हो। मुण्डण पर्वत धनसा (पश्चिम नयार) के दाहिनी तरफ चन्द्रकूट से दिखलाई देता है।

शिवि, काशिराज १० १७६

शिवि नाम का स्थान रुद्रप्रयाग और कर्णप्रयाग के बीच यात्रालाइन पर है। काशिराज धन्वन्तरी को कहते थे जो प्राचीनतम काशि का राजा था। काशि के नष्ट भ्रष्ट होने से उसे साम्प्रति गुप्तकाशि कहते हैं। गुप्तकाशि पर्वत पर अमूल्य औषधियाँ होती है जिनका प्रयोग गोधन पर किया गया था। तभी काशिराज का नाम धन्वन्तरी हुआ। ऋतरय या सदने कोशे अध्ने ऋ १० १०० १० बतला रहा है कि काशि मे यज्ञ होता था और वहाँ औषधियाँ होती हैं।

शैलेषु १०.१२६

शैली और शालकोट ग्राम और शैली और शैलवाल जातियाँ गढवाल मे हैं। शैलुषि स्वयं बतला रहा है कि वह पर्वतीय था।

पर्वत काण्व ८.१२

केदारखण्ड के अनुसार कण्व ऋषि का आश्रम नन्द प्रयाग के निकट था। जो कण्वऋषि वहाँ रहा होगा उसका पर्वत काण्व नाम से प्रसिद्ध होना ठीक ही है। उसने वृत्रासुर के वध पर भी प्रकाश डाला है। (ऋ ८ १२ २२-२४ २६)। उसने "हर्यता हरी" हरनीले अश्वों का भी उल्लेख किया है जो वृष्टिप से मारे जाते हैं (ऋ ८ १२ २४ २६ २७,२८)

सुनु १०.१७६

सुनो नाम का ग्राम वधान में है। ऋभुम्नों के वंश में सुनु का जन्म हुआ था। सन्याल, सन्वाल उसी के वंशज हैं।

अपाला ८.९१

अपोला, ग्राम गढ़वाल की दक्षिण सीमा पर है। वहाँ मोम वनस्पति नहीं होती, इसलिए जामुण का रस पीते थे (ऋ १ १७६.२)। इस ऋषिका ने अपनी पद्य रचना में वर्णन किया है कि कन्या कैसे पति के साथ विवाह करे। वह कहती है कि रजोवति होने के पश्चात् केवल सन्तानोत्पत्ति के हेतु हर प्रकार से बलशाली ऐश्वर्यवान् पुरुष को पति करे*।

सावित्री १०. ८५

सावत्री को सूर्या की पत्नी इसलिए दी गई है कि उसने सूर्य की उन किरणों का पता लगाया जो रात्रु को अश्विनी नक्षत्र को प्रकाशित करती हैं। उसकी उसने गणित निकाली। वह शल्य वंश की थी और सावली पट्टी में रहती थी। उसके दो वाक्य बहुत प्रसिद्ध पा चुके हैं। "सूर्यायाऽश्विनावरा' और "पतिमेकादशंकृधि"।

वरु १०.९६

वरु नाम के ग्राम वडेथ और वडोली में रहते थे। ऐसे ग्राम दक्षिण गढ़वाल में एक से अधिक हैं। इस सूक्त में हरि की स्तुति है। इस लिये वरु को हरियेन्द्र भी कहते हैं।

---

*कुविच्छकत्कु वित्करत्कुविन्नो वस्यमस्कन्। कुवि-त्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण संगमामहो ऋ ८.९१.४।

हिरण्यस्तूप १.३१-३५;६.४

हिरण्यस्तूप चन्द्रकूट की पिंगलापारवा पट्टी में रहता था। गुरुराष्ट्र (गुण्ड) के सोमवंशियों का पुरोहित, धर्माचार्य उपदेशक था। उसी की योजना के अनुसार इन्दुवंशियों ने दिग्विजय किया। इन्दु नदी, इन्दुदेश, इण्डस, इण्डिया, इण्डियन, ईंद शब्दों को जन्म देने वाला यही राजकुल है।

मनु ६.१०१-१०६ । ८.२७-३१

मनु को यम, वैवस्वत कहते हैं अर्थात् मनु यमनोत्तरी से आया और माना प्रांत में उसकी रक्षा हुई। सप्त मूल पुरुषों में मनु की भी गणना है, इसलिये वेद इनके लिये कहता है कि माना के ये तो सुनु है* माना प्रांत ही में सिन्धु, सरस्वति, विष्णुलोक, वह्निलोक, चतुर्भुष्टि, मरीची पर्वत हैं। बद्रिनाथ की यात्रा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है। मनु को विष्णु ने वरण करके कतुभवाले प्रांत को भेजा जिसको मानसखण्ड कहते हैं। माना ही से यह भेजा गया था और मनु करके अधिक प्रसिद्ध हो गया। वैसे तो सप्त ऋषियों को सप्त मनु कहना चाहिये। मनु यज्ञ धर्म का प्रचारक था। यम भी मनु का नाम है (ऋ १० ५१ ३ ५), मनु सावरण उसी को कहते हैं (ऋ ८ ५१ १)।

मारीच कश्यप ६ ११३-११४

मारीचात् कश्यपा जाता पुराणोक्त वाक्य भी है। मरीचि

---

*सूनोर्मानेना (ऋ १.११७.११) इदं यमस्य सादनं देवमान यदुच्यते (ऋ१०.१३५.१) परिष्कृतम् देवमानेन चित्रम् ऋ १०.१०७ १०।

श्रौर कश्यप हिंसा के वोधक हैं। हिरण्यकश्यप के हिंसक कर्मों का वर्णन पुराणों में पाया जाता है। यह ऋषि काश्यप वंश का जन्मदाता है श्रौर मरीचि पर्वत श्रौर माना से सम्बन्ध रखता है। उसके कारण गढ़वाल को केदारे ग्रश मण्डलम् भी कहते हैं।

देवाः १०.१३३

धोतलि (देवस्थली), देवस्थल पर्वत चन्द्रकूट में, देवराणा ग्राम श्रजमेर पट्टी में है। यह सूक्त वतला रहा है कि देववशियों ने सुगम मार्ग वना लिये थे*। तव देवराणा में देववशियों की वस्ति हुई। देवा ऋषियों की रचना में 'अश्मन् वति रीयते' (१०.५३.८) पत्थरों से गंगलोड़ो से भरी नदी की उपमा दी गई है जो साबित करता है कि देवा, देवहूति ने यह पर्वतीय देश में किया था जोकि बुध्न मूल स्थान गढवाल है।

पैजवन १०.५१-५३

पैजवन वंशियों की वस्तियां पजेरा, पैज्याणा हैं। पजईं जाति भि गढ़वाल में मौजूद है। "पैजवनस्य दाना" वैदिक वाक्य है।

यम १०.१४

यम यमनोत्तर प्रांत का रहने वाला था। यम को यमुना-भ्राता भी कहते हैं। इसकी रचना साबित कर रही है कि यम को ही वैवस्वत कहते थे†। यम वैवस्वत ने उपनिवेशों की

*सुगान्पथः कृणुहि देवयानान् ऋ १०.५१.५

† वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ऋ १०.१४.१। यम वैवस्वत राजा के साथियों सहित भोजन से सत्कार किया गया।

स्थापना की थी। उसकी वहिन को यमी वैवस्वती कहते थे। यम अपनी वहिन यमी-सहित माना को आया, इस कारण उसका सदन माना में कायम हुआ था। इदं यमस्य सादन देवमानम् यदुच्यते। १०.१३५.७। यमनोत्तरी और माना गढवाल में हैं।

यमी-वैवस्वती १०.१०

यमी और यम का सम्वाद साबित कर रहा है कि एक ही माता पिता से उत्पन्न भाई वहिन में विवाह सम्बध नहीं हो सकता। यम की तरह यमी-वैवस्वती भी यमुनोत्तर से आकर माना में सुरक्षित रही। यमी ने सप्त उपासनाओं का वर्णन किया है।

मनु और शंभु १.४६.१३

विवस्वति में रहने वाले मनु और शंभू सोमरस पीने के लिये पुकारे जाने पर, आगये। विवस्वति शब्द माना के लिये आया है। शभू-स्वयंभू विष्णु का वाचक है। यथा मनो विवस्वति = ५९ १।

भिक्षुः १०.११७

भिक्षु भिरिया सैण पाली पहाड़ का निवासी था। वहां धानों की फसल अच्छी होती है। यह धानों का दान किया करता था। इस सूक्त में धानानशन की प्रशंसा है। पूर्व काल में पाली पहाड़ गढवाल का ही पूर्वि भाग था।

मत्स्या जालनृदा १०.६७

यह ऋषि मछलाड़ नदी में जाल डालता रहा होगा। मछलाड़ नदी चन्द्रकूट में है। शर्यणावति इत्यादि नदियों का जल इसी में होकर पुष्पिरा में मिलता है।

पुरुरवा १०.९५

पुरुरवा बुध का पुत्र है। बुध का निवास स्थान बधान (बुध-अयन) में था, इस लिये पुरुरवा की राजधानी बधान की सीमा के भीतर पतिस्थान में थी जिसे साम्प्रति पांतिपागतो कहते हैं। पुराणों में इसी स्थान को प्रतिष्ठानपुर नाम दिया गया है। इस स्थान पर इला ने बुध को अपना पति स्वीकार किया था, इस लिये इसका नाम पति स्थान हुआ था।

कुशिक गाधि ३.१९-२२

कौशानी पर्वत के राजवंश को कुशिक वंश कहते हैं। यह इन्दुवंश की एक शाखा है। कौशानी पर्वत अल्मोड़े जिले में है इसी पर्वत से कोशी नदी निकलती है। गाधि की स्त्री का नाम भी कोशी था। गाधि के वंशजों को कौशिक भी कहते हैं।

वैदिक समय की बस्तियों का संक्षिप्त वर्णन ऊपर हो चुका है। इनमें से अधिकतर बस्तियाँ गढ़वाल जिले के चन्द्रकूट प्रांत में हैं जिसने इन्दुवंश को जन्म दिया और जिसके कारण हमारा देश इन्दु-इण्डिया कहाता है।



विशेष स्थान

चन्द्रपुर ७.७२.१

इस नाम का दुर्ग और प्रांत गढ़वाल मे है। वैदिक समय के पश्चात् वहाँ के राजा को बोलांदो बद्रिनाथ कहने लगें। पूर्व युग मे वहाँ का राय-राजा विष्णु था। ७ १००.२। वहाँ सवारि के लिये अश्व और वृषभ काम मे आते थे। इस प्रांत मे सोना चाँदि बहुत निकला था। इस लिये इसको पुररचद्र और हिरण्यगर्भ प्रदेश भी कहते थे।

अद्रिबुघ्न १०.१००.७

सांप्रति इस स्थान को आदवद्रि कहते है। यहाँ से असुर गायों को चुराकर ले गये और उनको रेकुपद मे छिपाया था। अलका मे जंघार पडा था जब सरमा वहाँ गई।

किल्विप १०७१.१०

किल्वास नाम के दो स्थान गढवाल मे हैं। येक तो राष्ट्रकूट मे है, जहाँ राय-राजा राहु ज्योतिप का ज्ञान प्रचार करता था। दूसरा किलवास चद्रकूट मे है, जिसको देव किल्विप (१० ६७.१६) और ब्रह्म किल्विप भी कहते थे (१०.१०६.१) देव समाज के शिष्य वहा ज्ञान प्राप्त करते थे तो उसको देव किल्विप कहने लगे। वहाँ के विद्वानों को ब्राह्मण की पदवी मिलि तो वह स्थान ब्रह्म क्लिविप नाम से प्रसिद्ध हो गया। ब्रह्मजाया का सबध ब्रह्म किल्विप से था।

सोमेसर ७.१०३.७

कौशिकी नदी के तट पर सोमेसर बृहद् मानसखड मे

है। वैदिक समय में प्रातृपि और सधत्सरि शिष्य यहाँ अध्ययन करते थे। बलराम भी द्वापर युग में सोमेसर होकर सरजु में स्नान करने गये थे।

अर्णा ४.३०.१८

अर्णा और अर्णावृत शब्द वेद में आये हैं। इसी अर्णा में मनु की राजधानी थी। पुराणों ने इसको वर्हिष्मति नाम दिया है। कत्युरि राजाओं की राजधानी यहीं थी, इस लिये इस रमणीक भूमि को कार्तकेयपुर कहते है। अर्णा नाम का प्रसिद्ध ग्राम यहीं है।

चैत्ररथ (४.३०.१८)

यह स्थान अति आकर्षक है। चैत्रमास वसंत के से दृश्य अद्वितीय होते हैं। यह वधान में है, जेठा गर्के इत्यादि स्थान यहीं है। राजा पुररवा भी इस वन को मनोरंजन के लिये आता था।

चंद्र बुध्न १.५२.३

सव्य आंगिरस चंद्रकूट का निवासि था। उसने जो वर्णन किया है वह गुण्ड से मिलता है। वह कहता है "स ही द्वरिपु वत्र उर्धनि चंद्र वुध्नो मद् वृद्धो मनीपिभि"। उस आनंद को वृद्धि करने वाले मनीपि चंद्र का जन्म स्थान उधनी की तरह गुप्त है और अनेक द्वारों से खड में जैसे नीचे उसमें जाते हैं। "बृहद् गभीर तव सोम धाम" वाक्य भी यही साबित करता है। देव स्थल पर्वत से वह दिखाई नहीं देता। गुण्ड है भी खड में।

पैदल आया है, नवीन गीतों से उसको प्रसन्न करो। ये माना के नवीन मर्तो और देव उसी के साथी हैं, उनको सुन्दर रुचिकर गाथायें दंत-कथायें सुनाओ।

ऊपर कथित उदाहरण जल्या से संबंध रखते हैं। उस भगदड़ में माना के निवासियों ने सहस्रों शरणार्थियों को अन्न देकर जीवन दान दिया था।

माना है कहाँ ? क्षीर सागर कहाँ है ?

(क)--मानेव तस्थिवां अंतरिक्षे (५.८५.५) जिस तरह माना अंतरिक्ष (गहरे खड, घाटी) में सुदृढ़ता से स्थित है। अंतरिक्ष में स्थित होने की असलियत माना में जाकर साबित हो जाती है।

(ख)—माना के पास ही सिंधु, विष्णु लोक अब भी देखे जा सकते हैं। वहाँ क्षीर सागर भी अवश्य था अथम लिखा गया है। "मम योनि अप्सु अंतः समुद्रे"। और "वर्षमणोप स्पृशामि" वाक्य साबित करते हैं मानावर्ष में समुद्र (जलाशय) था। "यह समुद्र सिंधु के जल से अंतरिक्ष में है और एकपात् अज (विष्णु) की महिमा वहाँ विद्युत जैसी तनकर विराजमान है"। समुद्र सिंधु रजो अंतरिक्षं अज एक पात् तनयित्नुः अर्णवः। १०.६६.११. सिंधु आपः समुद्रियः वाक्य पहिले उद्धृत किया जा चुका है। कालांतर में सिंधु के बहाव से वहाँ का चट्टान जो उसके जल को रोके हुआ था छिन्न-भिन्न हो गया और क्षीर सागर भी लोप हो गया।

कुर्माचल

कुर्म ऋषि वैदिक काल में हुये। पुराणों में कुर्म अवतार की महिमा गाई गई है। कुर्माचल पर्वत कुर्माकार

रमणीक भूमि का प्रांत है। यहाँ भी अर्णा और माना की तरह समुद्र (सरोवर) था। ये सभी लोप हो गये हैं। देश में कूर्मि कौम कूर्म ऋषि के वंशज हैं।

योरप (१०.१८.२)

अरप स्वभाव वर्तावा के भारतीय पृश्निमातर गोमतरों की बस्तियाँ जिस देश में वृद्धि को प्राप्त हुई यह देश "योअर्पां" प्रसिद्ध होकर योरप नाम प्राप्त कर गया। यह महान् पदवी उस देश को इर्दुवंशियों ने प्रदान की।

रूश (५.३०.६-१५)

रोपिते स्वभाव के रूश में भारतीयों का आधिपत्य था। ऋणचयं ऋषि वहाँ कर संग्रह करते थे।

आस्का-अलास्का (१.१८६.२।५)

यह अमेरिका में है। इस समय इसे अलास्का कहते हैं। अगस्त वंशियों की अध्यक्षता में नागवंशि वहाँ गये। क्योंकि वाराह भगवान के समय में मंगल प्रदेश में अधिक सभ्यता फैल गई थी।

सुमित्रा (१०.६५.३)

शूर सुमित्र का आधिपत्य यहाँ था।

जाभा

यवया वधं। जवारू को यहाँ भेजा गया था शासन करने। इसको यव द्वीप कहते थे और यहां के अधिवासियों को यवन।

अहिर्बुध्न्य १.१८६.५

अहि वंश का मूल पुरुष राजा रुद्र की शरण में गया। वहीं इस वंश ने अगस्तवंश के सहयोग से देव समाज में स्थान प्राप्त किया। कृष्ण सर्प ही राजा रुद्र का वीरभद्र है जिसने पौराणिकों के अनुसार दक्ष का यज्ञ विध्वंश किया। रुद्र के राज्य को नागपुर नागवंशि प्रजा के कारण कहते हैं।

देव माना

माना ही सभ्य मानव का मूलस्थान। इसीकी बदौलत मानव, मनुष्य मनु, मनसि शब्दों का जन्म हुआ और इसीने जननी जनक की तरह मानव को मननशील बनाकर उसकी बुद्धि का विकाश किया। तीसरी अवस्था के लोगों का पालन पोषण यहीं राष्ट्रि विष्णु करते थे और उनके पास ज्ञान प्राप्त करते। यहीं सिंधु का उद्‌गम स्थान है। उसके ही जल से क्षीर सागर की उत्पत्ति हुई थी जिसमें विष्णु जलस्थंभ अभ्याश करते थे। सिंधुः आप. समुद्रियः (१० ६५.१३) विष्णु मानावर्ष से सागर के तट पर निवास करते हुये शासन चक्र चलाते थे (१०.१२५ ७)। नीचे लिखे वेद वाक्य माना की महिमा स्थिति का वर्णन करते हैं.—

१ –इद वेश्म पुष्करणीव देव मानेव चित्र (१०.१०७ १०) यह वस्ति तो देवमाना की फुलवाडी के सदृश चित्र विचित्र पुष्पों से-सजी हुई हैं।

२—इम यमस्य सादन देवमानं यत् उच्यते १०.१३५.७ यम का सदन देवमाना में था।

३—ऋषियों को सूनोर्मानेन (१ ११७.११) माना का

स्तुति करते थे क्योंकि जलप्लावन के समय उनकी प्राण रक्षा माना में हुई थी।

४- अपश्यं ग्राम वह मान आरान ऽचक्रया स्वधया वर्तमान। सिषक्त्यर्यः प्रयुगा जनानां। सद्य. शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् (१०.२७ १९)

प्राण रक्षा के लिये भागते हुये प्राणि माना ग्राम को देख कर वहाँ पहुँचने के लिये सीधे तीर की तरह दौड़े और चिपकते हुये युगल स्त्री पुरुषों ने नवीन शिश्ना को तोड़ा-मौना अन्डि तरह।

५--देवानांम् माने प्रथमा अतिष्ठन् (१०.२७.२३) देव समाज के स्त्री पुरुष माना पहुँचे तो वहीं ठहर गये।

६ यत् पंचजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत। अस्तृणाद् बर्हणा विपोर्यो मानस्य स क्षय। (८ ६३ ७) पचजना की प्रजा अपने इन्द्र सहित माना मे पहुचे तो उन्होंने इला स्त्रिया शरण पाने के लिये। इन बाहर से आये हुओं ने माना की भूमि मे तृण घास उगाड़ के अपना निवास स्थान बनाया।

७--अयोचाम निवचनानी अस्मिन् मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ। वय सहस्र ऋषिभि सनेम विद्यां इष वृजन जीर दानुम्। १.१८६.८

इस पराजयकारि यज्ञ मे माना के पुत्रो (माना निवासियो) से निश्चित वचनों से निवेदन करते है—हम सहस्रों ऋषियों को अन्न प्राप्त करके जीवन प्रदान करो।

८—अनर्वाण वृषभ मद्रजिह्व बृहस्पति वर्धया नव्य मर्कै। गाथा न्यः सुरुचो यस्य देवा आश्रृण्वति नव मानस्य मर्ताः। १.१९० १ मद्रजिह्वा वृषभ बृहस्पति जो माना मे

वीरनियो

वेनो भार्गव यहाँ राजपाल था। ऋग्वेदिक इतिहास देखो।

मानिला (१०.१५३.३)

यह मन्युरिव इन्द्र का स्मारक है--निऋति देश में।

वैलस्थान-महावैलस्थ (१.१३३.१।३)

निऋति देश स्थित वालि द्वीप है जहाँ महा द्रोहियों का दहन ऋषियों ने किया था क्योंकि वे कष्टदायी थे।

वट्रूरिणा (१.१३३.२)

इसको महावट्रूरिणा पद भी कहते थे। अद्रिव इन्द्र ने यातुधानों की सी मति के शत्रुओं के शिर्षों-शिरों को कुचल डाला था। यही वटेभिया है। यहां के आधिवासि वटोइयों को मार्गों पर नहीं चलने देते जब तक उनसे पथ कर वसूल न होता था। वटेभिया मे वटोई भयभीत रहते थे।

गिन्नु (१.१६४.३२)

देव वंशियों ने इस देश को कहा हिरु गिन्नु, विष्वगेनो (१०.३६.६) क्योंकि यहाँ के अधिवासि हूर और विपेले जैसे थे। ये सप्त देश नैऋत्व कोण मे हैं और निऋति देश कहलाये क्योंकि यहाँ के लोग ऋत का पालन नहीं करते थे। सुजाता वहीं कहलाता था जो ऋत का वर्तावा करता था।

रोहिदश्वदेश १०.६८.६

वर्तमान रोहिलखंड उत्तर प्रदेश का भूभाग, रोहतक और रोहिताश्वगढ़ पंचनद देश के प्रसिद्ध स्थान हैं।

ज्योतिष्मति (१.१३६

आदित्यवंशि मित्र वरुण अर्यमा इस प्रांत का प्रबंध करते थे, दान देते थे इस लिये दानुनस्पति कहलाये। इसके बहुत नाम हैं और उसकी प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। जोतिषपुर, प्राग्ज्योतिषपुर, जोतिमर्ग और अब जोशीमठ इसीको कहते हैं। यह उत्तर गढ़वाल में है।

आंध्र देश (१.३१.१४-१६)

यह प्रांत समुद्र के तट पर दक्षिण भारत में है।

अर्यावर्ति ८.२२.१०

शौर्य और धीमान निहथ ऋषियों का आधिपत्य यहाँ था।

पर्शिया १०.६.८

यहाँ से नृपति अश्व आते थे। यहाँ भारतियों का राज्य था।

सवितस्य भूम (जापान) १०.३१.७

जापान को Land of Rising sun सूर्योदय की भूमि सर्व प्रथम ऋषियों ने कहा। वे इन द्वीपों को देखने अपने अपां नपात् में गये थे। जिस तरह यव (अन्न) के जहाज के कारण यव द्वीप कहा गया, नपात के कारण जापान को नेपन कहने लगे।

अहियों की बस्तियां

डोटी २.१०.५

धौती नाम के आहियों का हनन करके पथों को अरिक्त कर मुक्त किया। सर्प जाति के सरपा नेपाल मे हैं।

चमुरि

चमाडी, चमराडा, चामी चमदेयल में इस जाति की बस्तियाँ थीं।

धुनि

पौडी के निकट धनक में यह रहता था।

मृग

पौडी के निकट मरगद्ना इस जाति का निवास था।

कुयव

कुयव का कौव बधान मे है।

शुष्ण (शुंभ)

सूया जाति का शुभगढ दानवपुर अल्मोड़ा जिले मे है।

बलस्य सानु

वालि कडारस्यु गढवाल मे है।

दुधौत सानु

इस रमणीक पर्वत की अपनी विशेषता है। इसके मध्य मे पू० रामगगा वहती है। यह नदी दूधवती है। गढ-

थाल में यह वनस्थी जल वायु में, स्वास्थ के लिहाज से, अपने मनोहर वनस्थलों के कारण सर्वोत्तम है। पूर्व काल में यहाँ वृत्रों का अड्डा था।

कुणज

साधारण लोग इसे कुणज ग्वाल के नाम से जानते हैं। कुणार, पियांरु को इन्द्र ने हस्त रहित, पाद रहित किया था।

कौलतिर

यह पधान का दुलसारी ग्राम ऋसु के तट पर है।

निमुचि

निमुचि बाजार नेपाल में हैं। निमुचि प्रांत सिक्कम में।

---

* मध्य एशियाई शिधांत गलत *

अपने पूर्वजों का अपने देश का गलत इतिहास, भूगोल अपने बालकों को सिखाना मानों अपनी सभ्यता संस्कृति को अग्निदग्ध करना है। प्रसंग वसात् इसका येक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। वर्तमान समय में हमारे अबोध बालकों की इतिहास और भूगोल की पाठ्य पुस्तकों में लिखा मिलता है कि पंजाब देश ही सप्तसिंधु देश है और ऋग्वेदिक नदियाँ पंजाब की समभूमि को सींचती है। यहाँ तक की ऋग्वेद वर्णित कुछ नदियों को चित्र द्वारा भी दिखलाया जाता है बालकों के हृदय पर अंकित करने को। इन पुस्तकों में वर्तमान नाम और ऋग्वेदिक नाम देकर यह साबित करने की चेष्ठा

की गई है कि मध्य ऐशिया से हमारे पूर्वज आये और वही हमारा बुध्न है और हमारे पूर्व पुरुषा पहिले पजाब मे वसे ।

पंजाब की नदियाँ

ऋग्वेदिक नाम	वर्तमान नाम	
१- सिंधु	सिंधु	ये है पाठय
२—वितस्ता	भेलम	पुस्तकों मे
३—असिक्न	चेनाब	दिये
४—विपाशा	व्यास	हुये
५—शुतुद्रि	सतलज	नाम ।
६—सरस्वति	सरस्वति दृषद्वति	
७—पुरुष्णि	रावि	
८—कुभा	काबुल	
९—क्रमु	खुर्रम	
१०—गोमति	गोमाल	
११—स्वेता	स्वात	

अब इन नदियों के नामों पर विचार किया जाता है ताकि पाठकों को मालूम हो जाय कि असलियत क्या है।

१—सिंधु ! किसी भी नदी को प्रारम्भ ही से सिंधु नहीं कहा जाता, अन्य नदियों से मिलने पर उसे सिंधु कह सकते है। समुद्र को भी सिंधु इसी सबब कहा जाता है कि उसमें अन्य जल सधि करते हैं। इसलिये इंदु नदी मे पजाब की नदियों के सधि के कारण सिंधु अत मे कहलाई इंदु ही। यदि यह नदि अपने उद्गम स्थान के निकट ही से सिंधु होती तो इंदु, इंडस, इंडिया, इंडियन शब्दों का प्रचार कहा से

होता, लेकिन गढ़वाल की अलाका (शुतुद्रि) वर्षात में सिंधु हो जाती है माना के पास विपाशा के कारण जो कि अलकापुरि से थोडि ही दूर नीचे है। असिल सिंधु नाम मिलता है विष्णु प्रयाग से जिसे सिंधु तीर्थ कहते थे। पच तीर्थों मे यह प्रथम तीर्थ है। प्रियमेध की त्रिसप्त नदियों में विपाशा की गणना नहीं है। इसका कारण यही है कि विपाशा (विपाक्) क्षण भंगुर है। जब वर्षा हुई तो सरस्वति विना पाश होकर विपाशा हो जाती है, वर्षा बंद हुइ कि सरस्वति अपनी असिल अवस्था को प्राप्त हो जाती है और असूर्या और अधसि होकर सर की सख्या मे पाशवद्ध हो जाती है। ऋग्वेदिक सिंधु की विशेषता यह है कि उसकी २१ नदियाँ सहायक हैं जिनका वर्णन प्रियमेध ने किया है। गगा, यमुना सजू (सरजू) और गोमति ऐसे नाम हैं कि जिनका ज्ञान सर्व साधारण को है कि ये नदियाँ उत्तर प्रदेश में बहती हैं, गगा यमुना का उद्‌गम स्थान गढ़वाल मे है, सरजू दानवपुर से निकलती है। प्रसिद्ध गोमती दो हैं, एक तो लखनऊ होकर बहती है और दूसरी अर्णावृत्ता से निकल कर बागेश्वर मे सरजू मे समाप्त होती है जिसको ऋग्वेद धेनुमति भी कहता है। इसलिये प्रियमेध ने लखनऊ की गोमती को ही सिंधु की सहायक नहा है। ये चत्वारि सुप्रसिद्ध सारितायें अपने जल को उत्तर प्रदेश की मुख्य नदी मे बहाती हैं। इसलिये मानना पडता है कि प्रियमेध वर्णित शेष १७ नदियाँ भी उसी मे बहती हैं, जिसको ऋषियों ने सिंधु नाम दिया है, उसपे विष्णुपदि होने से उसको त्रिसप्त धनेवों (सरिताओं) की माता स्वीकार किया है, उस पर पचतीर्थ होने से उसको परमाणि माना है (४ १ १६) और अलाका का अलौकिजल उसमे प्रधान होने से उसको नदियों मे प्रथम पद दिया है।

इसलिये ये २१ नदियाँ पजाब की इदु या सिंधु की सहायक नहीं मानी जा सकति और पजाब की सिंधु ऋग्वेदिक सिंधु नहीं है।

२—वितस्ता और ३ असिक्नि, वितस्ता का अर्थ होता है बीत गई है तारण शक्ति जिसकी, इसलिये इसको विदग्धा भी कहते है अर्थात् जिसकी वहन शक्ति दग्ध है। पाठ्य पुस्तकों में झेलम को वितस्ता नाम दिया गया है जो कि गलत है। वितस्ता तो ऐसी छुद्र नदी हो सकि है जो निस्ताना सदृश पर्वतीय स्थान के निकटवर्ति हो। असिक्नि शब्द इनन् से संबधित है अर्थान् अशक्त असिनि शक्ति हीन है। यह भी छुद्र गधेरा हो सकता है जिसका संबध सक्रोलि ग्राम, सकिनो साग वनस्पति से हो जो गढवाल में पाये जाते हैं। इस लिये चेनाब को असिक्नि कहना गलत है।

यह भी विचारना है कि ऐसे छुद्र स्रोतों गधेरों का वर्णन प्रियमेध ने क्यों किया ? यह हम मानते है कि महान् व्यक्तियों, स्थानों और घटनाओं के कारण छुद्र स्रोतों की मान्यता प्रसिद्ध हो जाती है। असूर्या सरस्वति की मान्यता हुई प्रथम विद्यालय के कारण, शर्यणावति की प्रसिद्ध हुई, इसके तट पर वृत्रासुर का बध होने के कारण, वर्णा और असि प्रख्यात हो गई काशि के कारण और उसका उपनाम वाराणसि ही अधिक प्रचलित हो गया अपभ्रंस बनारस के के द्वारा। सक्रोलि में शक्तिवान् अरिष्टनेमि के वंशज रहते हैं, इस कारण उसके निकटस्थ असक्नि स्रोत की ख्याति हो गई।

प्रियमेध की रचना से ऐसा मालूम हो रहा है कि उसका

समय यमुना, गंगा, सरस्वति के संगम से था[1] और त्रिसप्त सरिताओं के वर्णन में उसने इनको प्रधानता दी। वाराणसि को वह जानता था इसलिये उसने अपनी कविता सम्पन्न भाषा में वर्णों को वितस्ता और असी को असिक्नि नाम दिये उनकी लघुता के सबब। प्रियमेध यह भी कहता है कि ये नदियाँ मरुद्वृधा हैं अर्थात् इनमें वायु की वृद्धि है। इस लिये अधिक सम्भावना यही है कि वितस्ता वर्णा है और असिक्नि असी। वेद कहता है "असिक्न्या यजमानो न होता" (४ १७ १५) जिस नदी से सिंचाई नहीं हो सकती उसकी आराधना कोई नहीं करता।

७—विपाशा, ४ शुतुद्रि पाश्चात्य पुस्तकों में ये व्यास, सतलज मानी गई हैं। पहिले लिखा जा चुका है कि विपाशा और शुतुद्रि का संगम पर्वतीय घाटी में है, लेकिन पंजाब की व्यास और सतलज का मेल सम भूमि में है जहां पर्वत है ही नहीं। इसलिये विपाशा और शुतुद्रि को व्यास और सतलज कहना गलत है। इस प्रसंग में यह कहने की आवश्यकता है कि जो पहिले से पाशों से बंधा हुआ है, पाशों के टूटने

१—यमुना गंगा के संगम पर भारद्वाज का गुरु आलय और प्रियमेध भगीरथ के पश्चात् का है। विष्णु प्रयाग के * ज्योतिषपुर का अनुकरण करके गंगा यमुना के संगम को ज्योतिषपुर नाम मिला यही वर्तमान समय की भूशि है। प्रयागों के कारण दोनों स्थानों को प्राग्ज्योतिषपुर कहने लगे थे। अबतो ये मृतक हैं। क्या लोग इनको पुनर्जीवित कर सकेंगे?

पर स्वतत्र होने पर, उसको विपाशा नाम मिल सकता है। पजाब की व्यासा ऐसी नहीं है, इसलिये उसको विपाशा कहना निहायत गलत है। व्यासा नाम तो उस व्यास के नाम से पडा जिसने उसके तट पर व्यास गद्दी की स्थापना की। हो सकता है कि सत्यवति पुत्र व्यास जब पजाब मे रहने लगे तो उनके सबध के कारण भि उसको व्यास नाम प्राप्त हुआ।

६—सरस्वति, पाठ्य पुस्तकों के चित्र मे चित्रित की गयी है कि दृपद्वति को सरस्वति की पदवी मिली या यों कहो कि दृपद्वति ने सरस्वति मे समाधि ले ली। मनु के अनुसार दृपद्वति ब्रह्मावर्त की पश्चिमी सीमा पर है और उसको ही सरस्वति भी कहते है। इसलिये हो सकता है कि द्वापर युग के उत्तरार्ध मे ब्रह्मावर्त के विद्वानों ने या सत्यवति पुत्र व्यासने या उनके शिष्यों ने उसके तट पर ज्ञान प्रचार किया और विद्यालय की स्थापना की और दृपद्वति को ही सरस्वति की पदवी आदरार्थ दी गई और वहा की शिक्षित समाज सारस्वत ब्राह्मणो के नाम से मशहूर हो गई। इसलिये वह सर मे सुप्त रहने वाली सरस्वति नहीं है जैसि माना की या यमुना, गगा सगम की सरस्वति। पजाब की सरस्वति को असूर्या अर्थात् नहीं कह सकते जो कि सरस्वति के विशेप विशेपण हैं। निर्णय यह है कि पजाब की सरस्वति ऋग्वेदिक सरस्वति नहीं है।

७—पुरुष्णि, इसका उल्लेख दोनों श्वावाश्व और प्रिय मेघ ने किया है। पाठ्य पुस्तकों मे रावि नदी को पुरुष्णि नाम मिला है। चूकि पुरुष्णि श्वावाश्व के प्रात की पुरुपार्थि लोगों की मुख्य नदी है श्वावाश्व की रचनाओं मे इसका

वर्णन आया है (४५२६,४५३६) वसिष्ट की रचनाओं में भी समरो के सबध में परुष्णि को अदिति कहा है (७१८८।६) वामदेव ने भी परुष्णि प्रांत की प्रशंसा की है (४२२७)। रत्नावाश्व का जन्म स्थान चन्द्रवुष्न की शाल्मलि पट्टी में है, वसिष्ट का अगस्तमुनि और वामदेव का वमोलि चन्द्रवुष्न। ये सब स्थान गढवाल में हैं। रत्नावाश्व ने स्पष्ट कर दिया है कि परुष्णि पुरुष्णि परीष्णिए पर्वतों की नदी है। वह कहता है कि परुष्णि के निवासी जो शुद्ध आचरण के है, ऊर्णस्त्रिया और ओजसा हैं पर्वतों का छेदन भेदन करके अत पथा, अनुपथा बनाते हैं रथों के वहन करने के लिये (४५२६।१०)। ऐसे पुरुषार्थि लोगों के कारण उस नदि का नाम नामकरण हुआ पुरुपार्थवति परुष्णि। इसको पूर्वि नयार कहते हैं जो व्यामा पर्वतान् की घाटी में अलाका (सिधु) से संगम करके सप्तसिंधु तीर्थ को जन्म देती है। अत सिद्ध हुआ, परुष्णि को पजाब की रावी नदी कहना गलत है।

रत्नावाश्व को यमुना नदी का ज्ञान था (५५२७) लेकिन उसको उसने सप्तसिंधवों में स्थान नही दिया यद्यपि यह यम के कारण बहुत प्रसिद्ध है। इसका मयथ यह है कि यमुना पर्वतों से बाहर निकल कर मातृभूमि को त्याग कर सिंधु में समाप्त होती है उस समभूमि में जिसे वर्तमान समय में यमुना-गंगा संगम और प्रयागराज कहते हैं। इसलिये भी सप्तसिंधु देश पर्वतीय प्रांत है न कि पजाब सदृश समभूमि। सप्तसिंधु मुख्य नदी है उसी पर्वतीय प्रांत की॥

पाश्च पुस्तकों में यह भी दर्शाया गया है कि सुभा, क्रमु, गोमति, श्वेता का जल ईटु नदी में बहता है। इसलिये इनके बाबत लिखना हमें आवश्यक प्रतीत होता है —

पर स्वतत्र होने पर, उसको विपाशा नाम मिल सकता है। पजाव की व्यासा ऐसी नहीं है, इसलिये उसको विपाशा कहना निहायत गलत है। व्यासा नाम तो उस व्यास के नाम से पडा जिसने उसके तट पर व्यास गद्दी की स्थापना की। हो सकता है कि सत्यवति पुत्र व्यास जब पजाव मे रहने लगे तो उनके सबध के कारण भि उसको व्यास नाम प्राप्त हुआ।

६—सरस्वति, पाठ्य पुस्तकों के चित्र मे चित्रित की गयी है कि दृषद्वति को सरस्वति की पदवी मिली या यों कहो कि दृषद्वति ने सरस्वति में समाधि ले ली। मनु के अनुसार दृषद्वति ब्रह्मावर्त की पश्चिमी सीमा पर है और उसको ही सरस्वति भी कहते हैं। इसलिये हो सकता है कि द्वापर युग के उत्तरार्ध मे ब्रह्मावर्त के विद्वानों ने या सत्यवति पुत्र व्यासने या उनके शिष्यों ने उसके तट पर ज्ञान प्रचार किया और विद्यालय की स्थापना की और दृषद्वति को ही सरस्वति की पदवी आदरार्थ दी गई और वहाँ की शिक्षित समाज सारस्वत ब्राह्मणों के नाम से मशहूर हो गई। इसलिये वह सर मे सुप्त रहने वाली सरस्वति नहीं है जैसि माना की या यमुना, गगा सगम की सरस्वति। पजाव की सरस्वति को असूर्या अधसि नहीं कह सकते जो कि सरस्वति के विशेष विशेषण हैं। निर्णय यह है कि पजाव की सरस्वति ऋग्वेदिक सरस्वति नहीं है।

७—पुरुष्णि, इसका उल्लेख दोनों श्वावाश्व और प्रिय मेध ने किया है। पाठ्य पुस्तकों मे रावि नदी को पुरुष्णि नाम मिला है। चूंकि पुरुष्णि श्वावाश्व के प्रात की पुरुपार्थि लोगों की मुख्य नदी है श्वावाश्व की रचनाओं मे इसका

वर्णन आया है (४.५२.६,४.५३.६) वसिष्ट की रचनाओं में भी मसरों के संबंध में परुष्णि को अदिति कहा है (७.१८.८।६) वामदेव ने भी परुष्णि प्रांत की प्रशंसा की है (४.२२.२)। श्यावाश्व का जन्म स्थान चन्द्रबुध्न की शावलि पट्टी में है, वशिष्ठ का अगस्त्यमुनि और वामदेव का वमोलि चंद्रबुध्न। ये सब स्थान गढ़वाल में हैं। श्यावाश्व ने स्पष्ट कर दिया है कि परुष्णि पुरुष्णि-परीणिण पर्वतों की नदी है। वह कहता है कि परुष्णि के निवासी जो शुद्ध आचरण के हैं, ऊर्णम्रदा और ओजसा है पर्वतों का छेदन भेदन करके अंत-पथा, अनुपथा बनाते हैं रथों के वहन करने के लिये (४.५२.६।१०)। ऐसे पुरुषार्थि लोगों के कारण उस नदि का नाम नामकरण हुआ पुरुषार्थवति परुष्णि। इसको पूर्वि नयार कहते हैं जो व्यासा पर्वतान् की घाटी में अलाका (सिंधु) से संगम करके सप्तसिंधु तीर्थ को जन्म देती है। अतः सिद्ध हुआ, परुष्णि को पंजाब की रावी नदी कहना गलत है।

श्यावाश्व को यमुना नदी का ज्ञान था (५.५२.२) लेकिन उसको उसने सप्तसिंधवों में स्थान नहीं दिया यद्यपि वह यम के कारण बहुत प्रसिद्ध है। इसका सबब यह है कि यमुना पर्वतों से बाहर निकल कर मातृभूमि को त्याग कर सिंधु में समाप्त होती है उस समभूमि में जिसे वर्तमान समय में यमुना-गंगा संगम और प्रयागराज कहते हैं। इसलिये भी सप्तसिंधु देश पर्वतीय प्रांत है न कि पंजाब सदृश समभूमि। सप्तसिंधु मुख्य नदी है उसी पर्वतीय प्रांत की॥

पाश्चात्य पुस्तकों में यह भी दर्शाया गया है कि कुभा, क्रमु, गोमति, श्वेता का जल इंदु नदी में बहता है। इसलिये इनके बाबत लिखना हमें आवश्यक प्रतीत होता है:—

८—कुभा नाम स्वय वतलाता रहा है कि वह किसी ऐसे प्रसिद्ध स्थान से होकर बहती है जो कुंभ की सी सूरत का हो। ऐसा स्थान अर्हिवुध्न प्रात के किनारे अगस्तमुनि है जिसका उपनाम उसके स्थान के कारण कुंभज भी है और उसी प्रात के निवासि कुभडि ब्राह्मण भी है। अत. वैदिक समय मे मदाकिनी को कुभा कहते थे। श्वावाश्व वर्णित सप्त सिंधवो मे कुभा है। पाश्चात्य कि काबुल नदी को पाठ्य पुस्तकों के चित्र मे कुभा नाम देकर उसकी महिमा को अंत कर देना है, यह तो केदार प्रात की मुख्य नदी है और पौराणिकों ने उसे देविका और वीरिणि भी कहा है क्योंकि वह कालिमठ की शोभा की भी वृद्धि करती है अपने मंद मुस्कान से। उसके तट पर कार्तिक वीर्य-स्कध का वीरनगर अगस्तमुनि के निकट था, जिसका स्मारक वहीं आकाश से बातें करने वाले पर्वत शृंग पर है। स्कध और अगस्त पडोसी थे, इस लिये अगस्त और लोपमुद्रा इतिहास श्रवण करने के लिये स्कध के पास जाया करते थे। स्कद पुराण मे इन्हीं के आपस का सवाद है। अत कुभा को काबुल कहना गलत् है। कुभा के तटवर्ति हविष्माम् सहस्र दक्षिणा दिया करते थे जिसकी ख्याति कुभ दान करके हो गई। यही आधार है कुंभ के मेलों का।

६—क्रमु। पाठ्य पुस्तक का चित्र क्रमु को अफगानिस्तान की खुर्रम नदी वतलाता है। यह केवल नामों की समता है। केवल इसीका आधार लेकर निर्णय करना ठीक नहीं। श्वावाश्व ने क्रमु की गणना सप्तसिंधुवों मे की है, लेकिन पाठ्य पुस्तकों के निर्माता मालूम होता है केवल प्रियमेध के सूक्त का आधार लेते हैं और क्रमु, कुभा को

सप्तसिंधवों में स्थान पाने के योग्य मानते ही नहीं। उनके तो पूजनीय देवता परदेशी हैं जो कह बैठे है कि भारतीयों के पूर्वज मध्य एशिया से आये हैं, न कि भरतम्य पुत्रा इस भूमंडल पर सब तरफ गये और मध्य एशिया को भी गये हम तो क्रमु को वुष्न प्रांत की मुख्य नदि मानते हैं क्योंकि यहीं कर कर्मियों की बाहुल्यता थी जिनकी रक्षा इंद्र ने की असुरों को दंड देकर। विड्डु, बड्डे, ओड़, कृषक और, श्रमिकों को करकर्मि कहते थे। श्यावाश्व धृष्णु इंद्र का सम कालीन था। इसलिये उसने वुष्न की पिंडर को क्रमु कहा जो अलाका से कर्णप्रयाग में संगम करती है। अतः क्रमु को सुर्दम मानना ठीक नहीं।

१०—गोमति। पाश्चा पुस्तकों के रचयिता गोमति को गोमाल मानते हैं। सिंधु के संबंध में गोमति पर अपना मत प्रकाशित कर चुके है। घूम घूम कर चलने वाली लखनऊ की गोमति ही मानी जा सकती है।

११—श्वेता। पंजाब को सप्तसिंधु मानने वाले लोग श्वेता को स्वात मानते है। यह केवल शब्द सादृश्य है। जब की प्रियमेध की गंगा यमुना सरस्वति, वितस्ता और असिक्नि उत्तर प्रदेश की मुख्य नदी अलाका में बहती है जैसा कि उपर सिद्ध किया जा चुका है, ऋग्वेदिक कवियों का कविर्बुध्न भी पंजाब में नहीं है तो मानना पड़ता है कि प्रियमेधकि श्वेता नीति प्रांत की निनभा है जिस नाम का उल्लेख श्यावाश्व ने किया है। अतः प्रियमेध की २१ नदियाँ "आर्यावर्त पुण्य भूमि मध्यं विंध हिमालयो" की प्रख्यात सरिता हैं और श्यावाश्व की सप्त सरितायें सप्तसिंधु देश गढ़वाल की। इन नदियों का संबंध पंजाब से नहीं है।

गढ़वाल (सप्तसिंधु देश) और मध्य येशिया।

हमारा मत यह है कि ऋग्वेद के प्रथम युग के पूर्वार्ध, के समय के निम्नलिखित विषय अचूक निर्णय करते हैं कि हिमालय की पर्वतीय भूमि आर्यों का ही नहीं, मानव जाति का उद्गम स्थान है:—

१—मानव जाति की उत्पत्ति अहि (एति) मंकी से हिमालय में हुई पहिले कहा जा चुका है। डारवीन भी इसका समर्थन करता है।

२—'सप्त विप्रा जाये महि प्रथमा' ऋग्वेदिक वाक्य है। ये मानव जाति के सप्तमूल पुरुष हैं। इनके मूल स्थान सप्त सिंधु देश, यमनोत्तरी और अलकावर्त दानपुर में हैं लिखा जा चुका है।

३—योरोपियन कल्पना के अनुसार आर्य जाति का अस्लि वास स्थान स्कैंडिनेभिया, लिथुआनिया की भूमि, दक्षिण पूर्वि रूस या मध्य एशिया था या स्वयं भारतवर्ष। यह कोई निर्णय तो नहीं है किसी एक देश के पक्ष में, लेकिन यह सिद्ध करता है कि इन सभि देशों को आर्य ऋषिवीर गये, वृताना ऋषि, यम और शासनी वरुण गये। इसी कारण आर्य जाति के प्राचीन काल में वहाँ बसने के चिह्न मिलते है। भारतवर्ष में तो मैक्समूलर के मत का आदर किया जा रहा है कि मध्य येशिया आर्यों का उद्गम स्थान है यद्यपि ऋग्वेद इसका समर्थन बिलकुल नहीं करता लेकिन भारतवर्ष के मान्य मान्य नेता शासक न तो वेद भाषा की मान्यता करते और न ऋग्वेद का अध्ययन। अभि तो वे अधिकतर अंग्रेजी विचारों के अनुयायी है। हमे इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि जीव ने विकाश के द्वारा उन्नति

करते हुये अंत में मनुष्य योनि का परमपद प्राप्त किया हिमावत में। यहीं सप्त मूल पुरुषों की जन्म भूमि है (देखो मूल पुरुष नामक लेख)। हिमालय की देवभूमि माणावर्ष में विष्णु लोक आर्य जाति के उद्भव उन्नति का केंद्र था। यहीं सर में सानेवालि सरस्वति के तट पर विद्यालय भी था। विष्णु को अध्यक्ष, राष्ट्रि और सुवा कहते थे और इन्द्र को विष्णु का युज्य सखा। इस कारण माणावर्ष ही हमारे देशांतर गमन का, उपनिवेशों की स्थापना का केंद्र भी बना। हमारे ऋग्वेदिक बाप दादे लिथुआनिया, स्कैंडिनेविया और जरमनी ही को नहीं गये उन्होंने तो समस्त योरप में सभ्यता फैलाई, लिथुआनिया में तो वे मूषक रोग से भी पीड़ित हुये वे तो इंगलिश चैनल को पार कर उन टापुओं में भी गये जिन्हें आयर बृटेन (आर्यावर्त) कहते हैं। इसके आभासक चिह्न ऋग्वेद में विद्यमान है (१०.१२-१६ सूक्त)।

(४)—जो विद्वान् मध्य एशिया को आर्यों का मूल-स्थान मानते हैं, उनका सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण यह है कि वहाँ खोज खुदान करने पर संस्कृत और आयुर्वेद के ग्रंथ मिले हैं। इसका बहुत सरल और पुष्ट उत्तर यह है कि हमारे पूर्वज इन ग्रंथों को वहां तब ले गये जब उन्होंने अक्षर लीपिका निर्माण कर लिया था। इससे प्रथम ही वे तो श्रुति-स्मृति शारीरिक शक्तियों के द्वारा ज्ञानोपदेश करते थे। सबसे प्रथम उन्होंने सप्तसिंधवों के संगमों पर ज्ञान प्रचार किया। जो ऋषि इस भूमंडल पर भ्रमण करते थे और मानो वृत बनाते हुये स्वदेश को वापस आते थे उनको वृतान१

१व्रताना-वृताना इन शब्दों की उत्पत्ति वर्त से है वर्त पकड़ कर ले जाते हैं, रास्ता दिखलाकर औरों के मार्ग दर्शक बनते हैं। वर्त कहते हैं रसना को।

ऋषि कहने लगे। इनके शाफे पहिने रहते थे तो इनको मुशाफिर सफर करने वाले, कष्टों को भोगने वाले कहने की रीति चल पडि। जो लोग ज्ञान को उपदेशों को श्रवण करते उनको कहते थे सूर्ते, जो नहीं सुनते उनको असूर्ते। इस तरह सूर्त असूर्ते, देव अदेवयु की उत्पत्ति हुई (१० ८२ ४)।

दाक्षि का पुत्र पाणिनी और धन्वतरी प्रथम युग के आरम्भिक काल के नहीं हैं जब अक्षर लीपि का निर्माण ही नहीं हुआ था, पाणिनी के व्याकरण बनने पर वैदिक भाषा का सस्कार करके सस्कृत भाषा बनी। इसके पश्चात् सस्कृत में ग्रथ लिखे जाने लगे। उपनिवेशों की स्थापना का कार्य तो इससे पेश्तर ही आरभ हो चुका था। धन्वतरि चद्रवशि तो काशी का राजा था। उसने आयुर्वेद पर ग्रथ रचना आरभ की। असिल बात यह है कि धन्वतरि के समय से प्रथम अथर्वा ने उत्साहित किया विप्र, ब्राह्मणों को औषधियों का संग्रह करने को और रोग पीडितों की सहायता करने को। धन्वतरी की काशि (उत्तर काशि) हिमालय में है, वह माडलीक राजा था। उसके राज्य में औषधिया प्रचुर मात्रा में होती है तो उसने समिति बनाकर औषधियों पर ग्रथ रचना कराई (१० ९७)। बुध्न से बाहर निचान देशों में राज्य का प्रसार करने के लिये सैकडा सहस्रो अश्विनि भेषज, अश्विनि कुमार दो दो तीन तीन की टोलियों में निचान देशों निऋति देशों को भेजे जाते थे (१ २४ ७-६) उनके सुभीते के लिये उनको अश्व प्राप्त थे इसलिये अश्विनि कहलाये। हमारे आयुर्वेद ग्रथ पहिले पहल मानावर्ष में बने, उनकी प्रतियाँ मध्य एशिया में मिलि तो आश्चर्य ही क्या ?

(५)—मध्य एशिया का पक्ष लेने वालों का यह भी कथन है कि अफगानिस्तान होकर खैबर दर्रे के मार्ग से हमारे

आर्य बाप दादे आये और भारतवर्ष की भूमि से मोहित हो यहीं के निवासी हो गये। मालूम होता है कि इनको और इनके मत के मानने वालों को केवल एक दर्रा-द्वार का ज्ञान है। हमारे आर्य वैदिक पूर्वज तो सप्त द्वारों से इस भूमंडल का चक्कर लगाते थे। ये सप्तद्वार हैं—नीलमद्वार, माना द्वार, नीतिद्वार, कोटद्वार, हरद्वार, गुरुद्वार१, और देवलद्वार२। हमारे ऋषिवीर, मरुत्सेना, अश्विनी इन्हीं द्वारों से मार्गों से मुख्यतः विविध दिशाओं को जाते थे और इन्हीं से वापस आते थे। अपने बुध्न से बाहर जाने में इनको अपनी जन्मभूमि सिंधवों को पार करने में कष्ट होता था, इसलिये श्यावाश्व कहता है कि ये नदियाँ उनके मार्ग में बाधा न पहुँचावें, न कहीं ठहरावें न रिंगावें। ऐसा निवेदन करके उसने धृष्णु इंद्र का ध्यान आकर्षित किया और इन नदियों पर भूले बनाने की, मरम्मत करने की आवश्यक्ता को प्रकट किया। ये शूर वीर जब देश देशांतरों का दिग्विजय करके आते थे तो इनका शानदार स्वागत होता था, विजयि सेना और सेना नायकों को हर्षित करने के लिये प्रशंसा की स्तुतिओं के साथ उनकी अगवानी होती थी२। इनके दर्शनीय रथ सूर्य की सी रश्मियों से चमकते रहते थे। चूंकि ये सप्तसिंधवों और सप्तद्वारों

१ गुरुद्वार—देहरादून प्रांत में गुरुद्रोण रहते थे इससे पेश्तर भी ऋषि ज्ञान प्रचार करते थे, २ देवलद्वार—मानस खंड अर्णाघृत को जाने का मार्ग है।

२ अग्मन् उक्थानि पौंस्यें जैमाय हर्षयन्। ६.१११.३।

के देश के निवासि थे और सूर्य जैसे तेजस्वी, दर्शनीय और आभूषणों से जगमगा रहे थे, काश्यप मारीच ने इनको सम्बोधन किया "सप्तदिशो नाना सूर्य" (९.११४.३) और अपनी मधुर वाणि से सप्त के साथ मानो क्रीड़ा करते हुये निवेदन किया "यहाँ तो सप्तसिंधु देश के सप्त होतार, सप्त ऋत्विज, सप्त देव आदित्य सप्तदिशोनाना सूर्यो के स्वागत के लिये शर्यणावति और आर्जिकीया का सोमरस परिस्रव कर रहे हैं। इसलिये खैबर द्वार से आर्यो का भारत आना कोई आधार ही नहीं रखता। ऐसे निहायत गलत विचारों का प्रचार हो रहा है उत्तर प्रदेश में पाठ्य पुस्तकों के द्वारा। क्या उत्तर प्रदेश के शिक्षक इस पर ध्यान देंगे?

(६)—मध्य एशिया के सिद्धांत के समर्थक यह घोषणा भी करते हैं कि आर्य जाति अपने पशुओं के लिये गोचर भूमि की खोज करते-करते भारत को आये।

यद्यपि यह सच है कि आर्यों के पास पशु धन प्रचुर मात्रा में होता था और वे अपने पशुओं के लिये चारगाह भी चाहते थे। लेकिन वास्तविक प्रश्न यह है कि उन्होंने अश्वन्यानि पशुओं को किस देश में ग्रामीण बनाया? इस प्रश्न का उत्तर ऋग्वेद और गढ़वाल कुमाऊ का भूगोल देता है। सप्तसिंधु देश गढ़वाल में अश्व बुध्न है जहाँ के अश्व पालतु बनाये गये, सवारि और बोझ ढोने के काम में लाये गये। वर वधु भी अश्वारोहण करते थे (१०.८.३)। अश्वालस्यु और शावलिर इसकी सबूत हैं। ऋग्वेदिक अश्विनौ अश्वनिकुमार,

२शावलि गढ़वाल की एक ऐसी पट्टी है जिसके पर्वत शृंग अव भि कहते हैं कि यहाँ अश्व अपने को (शेष पृष्ठ ७२ पर)

असुनीति हमारी सभ्यता के पूर्वार्ध मे हुये। वसुओं ने जगलि चवर गायों को पालतु बनाया, इसलिये जमदग्नि ऋषि अदिति गाय को कहता है दुहिता वसूना। वसुधारा वसुओं का स्मारक माना के पास बद्रिनाथ की भूमि मे है। गो नाम का ग्राम अल्मोडे जिले के दारमा प्रात मे है। वसुओं के वशज मरुत सेना मे भि भरति होते थे और वसव मरुत कहलाये। जिस तरह अष्ट यम, अष्ट विश्वामित्र हुये, अष्ट वसु भी हुये। आदि काल के अदिति वश ने गायों को पाला पोषा और उन्नत किया, इसलिये जमदग्नि कहता है कि गाय तो आदित्यों की स्वसा है—स्वसादित्याना। कृषकों के लिये गाय अत्याधिक उपयोगी सिद्ध हुई, उसके पुरीष से खेत्रों की उत्पादन शक्ति बढ गई, गाय के वत्स वृषभ कृषि कर्म मे कृषकों के सहायक हो गये, गाय के दुग्ध घृत से कृषक बलिष्ट हो गये, वे उत्साह पूर्वक डाकु, चोर राक्षसों को दड देने लगे, भगाने लगे तो ये राज्य की सेना मे भरति किये गये और रौद्र रूप धारण करके शत्रुओं को रुलाने लगे उनको रुधिर वमन कराने लगे तो इनका वश रौद्र, रुद्र, रुद्राणा करके हो गया, इसलिये जमदग्नि कहता है कि गाय तो रुद्रों की माता है—माता रुद्राणा। साधारण तया इनको गोमातर गाय है माता जिनकी नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हो गई। गायों की अति के कारण शरद ऋतु के चौमास मे तो घृत की अधिकता हो जाती थी, इस समय बहुत सी गृह लक्ष्मिया केवल घृत का आहार करति थि और समर मे शत्रुओं को

सुरक्षित समझते रहे होंगे। अश्वावलि का आवलि उसी तरह बना जैसे असवार का सवार। ये सभि शब्द अश्व से संबंधित हैं।

पछाडती थीं जैसे पुररवा की विदुपि स्त्री उर्वसि (१० ६४.१६)। बुध का पुत्र पुररवा वधान का राव राजा था, उसकी स्त्री ने जंगली अजावय शिशुओं का पालन पोषण करके पालतु बनाया। इस तरह सप्तसिंधु देश गढवाल में अश्व, गाय वृषभ, भेड, बकरियों की प्रचुरता हो गई। हिमाच्छादित घाटियों में रहने वालों को अधिक कष्ट होता था, इसलिये हेमंत ऋतु में अपने पशुओं को लेकर अन्यत्र चले जाते थे। तब विष्णु की अध्यक्षता में यह निर्णय हुआ कि गोमातर पृश्निमातरों का देशातरगमन सावधानि से नियमानुसार किया जाय, सबसे पहिला उपनिवेश तीन नदियों के देश में हुआ। इसके पश्चात् इशान् पूर्व दिशा के अतिरिक्त, सर्वत्र आर्यों के आर्यावर्त बने जहाँ सूर्यास्त नहीं होता था। निवेदन का तात्पर्य यह है कि जिस देश में जगलि पशु पालतु बनाये गये१ वही देश आर्यों का बुघ्न है न, कि मध्य एशिया या और कोई अन्य देश। मनुष्यों की प्रधानता में चारों दिशाओं के देशों को परेयिवासि मार्गावर्षं से ही गये। गोपेश्वर निवासि गोपायन बंधुओं ने इस पर प्रकाश डाला है। उनके गीत का नारा है। मनो जगाम दूर कम्। तत्र आ वर्तयामसि इह क्षयाय जीवसे। (१० ५८ १ १२)। लोगों में प्रचार किया गया कि इस ससार में सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिये वहीं दूर देशों को चलो जहाँ मनु जा रहे हैं, आओ, स्थान स्थान पर वर्तमान हो जाओ अपने अपने समूह बनालो। देश में इसका प्रचार किया गया। उसने अपनि रचना के प्रथम ऋचा में स्पष्ट कर दिया है कि यम वैवस्वत को ही माना

१पशून् तांः चक्रे वायव्यान् आरन्यान् ग्राम्याश्चये १०.९०.८।

के कारण मनु भी कहते हैं। गोयायन बांधवों ने यह भी वर्णन कर दिया है कि वृहन् पर्वत हिमालय में वह केंद्र कौन था जहाँ से देशांतर गमन के लिये भूत काल में प्रबंध होता था और भविष्य में भि होता रहेगा। उसके चिन्ह बतलाये गये हैं—चतुश्रष्टि भूमि, समुद्र अर्णव, मरीची पर्वत, औषधियां और जल धारायें। ये सब विष्णु लोक को बतलाते हैं। इसमें संदेह करने की गुँजायश ही नहीं है१। इसलिये यह साबित है कि शीत प्रधान देश हिमालय के भारतवर्ष-सप्त सिंधु देश से पृथिमातर, गोमातर, त्वष्टा, मरुत, ऋषिपुत्र इस भूमण्डल पर फैले न कि मध्य एशिया से। उत्तर और वायव्य दिशाओं की ओर जाने में हमारे ये पूर्वज नीलमद्वार, माना द्वार और नीतिद्वार से गये और इन्होंने हिमाच्छादित हिमालय को पार किया, और कोटद्वार, हरद्वार, गुरुद्वार से वे दक्षिण पश्चिम दिशाओं को गये। चंद्रवृष्ण के इंदु वंशियों ने शिव-लोक पर्वत श्रेणि को पार कर पांच नदियों के देश को अधि-कृत करके इंदु नदी को अपने साम्राज्य की पश्चिमि सीमा बनाया। साम्राज्य की रक्षा करने के लिये इंदु नदी से पश्चिमि पर्वतीय देशों में राजा देल के अधीन पुष्ट पुरुत्रा हदीर के आर्य बसाये गये और देश का नाम ही पारस्ता

१ चतुश्रष्टि भूमि=बद्रिनाथ का चौखंभा, समुद्र अर्णव=क्षीर सागर, मरीची पर्वत=जहाँ मार्छी रहते हैं-माना पर्वत, नीति पर्वत, औषधियाँ=हिमालय तो औषधियों के लिये प्रसिद्ध है। अपः=जलधारायें बद्रिनाथ की भूमि में बहुत हैं।

हा गया और वहाँ खेल के कारण जकाखेल² इत्यादि नाम। इस देश में अधिकार जमाने में तो खेल की रानि विश्पला की जांघ भी कटी थी (१.११६.१५)।

इसी तरह विलोचिस्तान में बल उग्र, वीर सैनिक सुरक्षा के लिये बसाये गये और उसका नाम कर्ण हुआ बल उग्र स्थान जिसका अपभ्रंश विलोचिस्तान है।

हमारे आर्य वीर जो संगीत शास्त्र में भी प्रवीण थे खैबर के दर्रे से आगे बढ़े और उस भूमि को उन्होंने हराभरा किया, वहाँ सभ्यता का विस्तार किया और उसका नाम कर्ण किया गांधार, क्योंकि वहाँ अधिकता हो गई थी गंधर्वों की। यह देश भी सीमा पर था, वहा भी बलवान आर्य सैनिक रहते थे। स्त्रियों भी रण कुशल थी। इसलिये ब्रह्मवादिनि रोमशो ऋषिका कहती है, गंधार देश की स्त्रियों के समान मैं भी सैकड़ों प्रजापूर्ण राज्यों की रक्षिका हो सकि हूँ (१.१२६. १४ १७)। इसी देश को वर्तमान समय कंधार अफगानिस्तान कहते हैं। इन देशों से आर्य जाति का इदुयश आगे योरुप की तरफ बढा। उनकी संतान धीरे धीरे उन द्वीपों की निवासी भी हो गये जिनको उनके आर्य होने के कारण आयर ब्रिटेन कहते हैं। वसुकर्ण ऋषि (१०६४.११-१४) ने तो संक्षेप में वर्णन किया है कि अमरकीर्ति के देवचरित श्रेष्ठ पुरुष इस पृथिवी के विश्व भुवनो को समस्त देशों को प्रस्थान करते हैं और ये सुंदर दान दक्षिणा देने वाले इस पृथिवि पर आर्य्य व्रतो का सिरजन करते हैं और अपने ब्रह्मज्ञान अनुभव के द्वारा गाय और अश्वों को उत्पन्न करते हैं, पर्वतो की

---

²जकाखेल, मूसाखेल, ईशाखेल, दाऊदखेल इत्यादि मे खेल तो राजा खेल का स्मृति चिह्न है।

वनस्पतियों से औषधि बनाते हैं और वहाँ के जलों से जल-चिकित्सा का प्रचार करते हैं। आर्यावर्तों की भूमि इतनी अधिक विस्तृत है कि वहाँ आकाश में सूर्यदेव सदा आरोहण किये हुये रहता है¹। इतने महान् साम्राज्य की स्थापना हुई थी इंद्रा विष्णु के सहयोग से। इसलिये मध्य एशिया का पक्ष लेना निस्सार है।

ऋग्वेद में इसके पर्याप्त प्रमाण हैं कि वैदिक ऋषियों ने समीप और दूरस्थ देशों में बस्तियाँ बसा दी थी, इसलिये उनको कहते थे अनवद्यमाना पथिकि, सधिचि, विषुचि, भुवनेषु अंत वरीवर्ति अर्थात् इन मार्ग दर्शक पथिकों का निश्चित स्थान कहीं नहीं है, ये तो चलते ही रहते हैं, सहयोग से रहने वाले, विश्व में सर्वत्र बस्तियों को बसाने वाले, विश्व भुवनों के अंतों छोरों में भी श्रेष्ट जैसे वर्तमान दिखाई देते हैं। (१.१६४.३१.) इसलिये इंद्र ने अध्यक्ष विष्णु को संबोधन करते हुये ठीक ही कहा था कि तुम्हारे अध्यक्षता में शत्रुओं को समर में जीतकर इस पृथिवी के चारों दिशाओं के देश मेरे सामने झुक गये हैं—मेरे आधीन हैं १०,१२८.१।

(७)—भाषा पश्चिम देशों के सभि विद्वान् एक मत हैं कि प्राचीनतम काल में हमारि पृथिवि पर एक ही भाषा का प्रचार हुआ, लेकिन वे उस भाषा के मूल स्थान की खोज

१देवान् वसिष्ठो अमृतान ववंदे ये विश्वा भुवनानि प्रतस्थुः। ब्रह्म गां अश्वं जनयंत औषधिः वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वतां अपः। सूर्यं दिवि रोहयंतः सुदानव आर्यव्रता विसृजंतो अधिक्षमि। १०.६५. १५.११।

करने मे वैसे ही असमर्थ रहे जैसे कि सप्तसिंधु देश और नदी को अन्वेषण करने में। मूल पुरुष, वुध्न और सप्त सिंधवों पर लेखों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि गढवाल ही एक मात्र ऐसा देश है जिसे सभ्य मानव जाति का, आर्य जाति का मूल स्थान स्वीकार किया जा सक्ता है। ऋग्वेद का प्राचीनतम ग्र थ होना सर्वमान्य है, उसके बहुत बडे भाग को हम लाखों वर्ष प्राचीन मानते हैं, इसलिये ऋग्वेदिक भाषा को ही सर्वतात्ति भाषा मानना पडता है और दुनिया की सभी भाषायें उससे ही उत्पन्न होकर अपभ्र श रूप मे विद्यमान है। इसका निष्कर्ष यह भी है कि गढवाल मे जिस बोली को यहाँ के सब साधारण निवासि आज भी बोलते है, वह वैदिक भाषा के अति निकट होनि चाहिये अन्य भाषाओं की अपेक्षा। इसलिये वैदिक भाषा के शब्द, गढवालि भाषा और हिंदी के तत्सम शब्द नीचे दिये जाते हैं।

ऋग्वेदिक शब्द	गढवालि	हिंदी
स्या	स्या	स्त्री के लिये
अतूर्ते	अटूट	अटूट
केन	केन	किसने
समेति	समेत	सहित
इत्था	यत्थ, इथई	इस तरफ
अध	उध, उद	नीचे
उर्ध	उव्व	उपर
गौर्य	गौडीया	गायें
गौरि	गौडि	गाय
गौरो	गौडो	गाय
अन्त्राणि	अंद्‌डा	आत

ऋग्वेदिक शब्द	गढ़वाली	हिंदी
मियो	मिथई	मुझको, मेरे पास
पृचानः	पिचगाणो	निचोड़ना
विवाल्यं	उमाल	उफान
वघ्रि	वघ्रि, ववरो	नीची मंजिल
अस्मा, अस्मा	येमा येमा	इसमें इसमें
मानुप	मनिख	मनुष्य
चम्वो	चंफू, चौंफला	चम्पू
वृथा	विथों	फजूल
पर्येति	पन्या मां	कलशों में
पर्चो	पल्चो	परिचय, पहिचान
गाधं	गधेरों	छोटी नदी
माण	माणा	१६ मुट्ठी अन्न=१ माणा
पाथो	पथा, पाथो, पाथा	४ माणा=१ पाथा
द्रोण	दोण	१६ पाथा=१ द्रोण
खार्य	खार	२० दोण=१ खार
मिढान्	मेढ़ा, खाडु	मेढ़ा, भेड़ा
जीवसे	जीवसे	जिह्वा से
त्वायु	त्वेयु, त्वेमां	तुममें
क:	क्या	क्या
वा‿र्ं	बवरो	वक्रि
मनसा	मनसाय	इरादा
विट्	विट्	ऊंची जाति
रीरमाम	रिंगाणो	घुमाना
मिनानो	मिनणों	अंगुलियों से पीस देना

ऋग्वेदिक शब्द	गढवाली	हिंदी
शीर्ष्णी	शेसणि शैणि	सिर, शयनि
वस्तु रनु	वस्तु रनु, वस्तु रौणो	निवास करना
सपर्यंति	सपोडदन, सपोडनो	सप सप करते हैं
रीति, रिते	रीतो	रिक्त-खाली या बिना
अगोपिण	अग्गालि	अग मिलाना
पियूप	प्यू सो	गाढा दूध
योनिमा	योनि मा	योनि मे
तृष्णा	तीप	प्यास
कति	कति	कितना
तृपाण	तिपालो	प्यासा
मोत	मौत	मृत्यु
वात	वथाऊ	हवा
गोष्टे	गोठ मे	गौशाला में
तमि	तमि (उ० गढ०)	तुम
व्यय	व्याले	गये दिन
भव्य	भोल	आनेवाले दिन
जानिमा	जननि	स्त्रिया
बघु	ब्वारि	बहु
वपुप	बावु वोइ	वापु, वाई
वुज	वुज्या	झाडि
सामान्या	समन्या, समनन	अभिवादन है गढाल में
आयन	आयने	आ गये
व्यति	वि अत, वेअत	विना अत
निपिद्न्	निसिगे, नेपुडो	चला गया, घुस गया
एनो मानि	इनो मानी गये	ऐसा मान गया

ऋग्वेदिक शब्द	गढ़वाली	हिंदी
वतमत्	वतमत्	हड़बड़ाना
सिपक्तय	क्रिपस्णो	सिसकना
गृर्तये	गुत्यणो	गुरु की तरह धम काना
शिरलो	शिरणो	कांटदार पत्ते पौधे हैं
घन	हन	

वैदिक भाषा के शब्दों के अपभ्रंश अंग्रेजी, पार्सि, तिब्बति में मिलते है उदाहरण के बतौर नीचे दिये जाते हैं—

वैदिक	अंग्रेजी	वैदिक	अंग्रेजी
सुपार	Superior	चरथ	Chariot
अहम्	I am	पथ	Path
मर्त्याय	Martal	सुनु	Son
अमर्त्याय	Immortal	नीड़	Kneed
हर्यता हरि	Horse	पितर	Father
कृष्ण	Christ	मातर	Mother
बैल	Bull	दुहिता	Daughter
उक्षा	Ox	स्वसार	Sister
गो	की Cow	अंगिरा	Ignis
सर्प	Serpent	अग्नि	Ignite
अरा	Arrow	संत	Saint
स्रोत	Source	उशत, वेषि	Wish
दरिद्र	Dear महंगा	चर्चा	Church
शत	Cent	अस्तत	Stable

वैदिक	अंग्रेजी	वैदिक	अंग्रेजी
सांवरण	Sovereign	दिव, दिवस	Day
मन	mind	अर्न	Earn
येमिरे	Aim	स्थित	Stay
दशक	Decade	नक्त	Nights
सेदु	Said	आर्य	R
द्वार	Door	दंत	Dent
वृजद्भि	Breeze	स्थान	Station, Stand
नक्त	night		
आगो	Ago	वैदिक	अंग्रेजी
रज्जु, रजिस्तृया	Rope	बाम	Balm
		रजिस्ट्रि	Register Registration
अंतर	Inter, In		
भ्रातर	Brother	स्वप्न, सुप्त	Sleep
शश्भाय	Service	रपांसि	Report
रीढ़िद्	Read	विवे	Weave
यामनि (जार्मनि)	Woman	मिनंति	Mice
		आददर्श	Address

वैदिक	इरानी (पार्सि)	वैदिक	इरानी (पार्सि)
सप्तसिंधु	हप्तहिंदु	दुहिता	दुख्तर
सोम	होम	मातर	मदर
सरस्वति	हरक्वति	भ्रातर	ब्रादर
सरयु	हरयु हरोयु	पाद	पाधा
सप्ता	हप्ता	जानु	पनु
नेष्टर	नेष्टर, नेजर	वृक	वेहर्क
पंच	पंज	स्था	स्ता

वैदिक	इरानी (पार्थि)	वैदिक	इरानी (पार्थि)
पांचाल	पंजाब	अहि	अजही
चंद्र अवस्था	गॅंद अवस्था	स्वप्न	गप्न
असुर	अहुर	अंतर	अंतरा
होता	जोता	दुरो, द्वार	दर्रा
यज्ञ	यस्त	काव्य	कवउस
अथर्वन्	अथ्रवा	मैतन	ग्रैटोना
आहुति	आजुति	उशाना	उपन
मित्र	मिथ्र	यम	यिम
अर्यमन	आर्यमन्	नासत्य	नौन हैथ्य
नराशंस	नर्योसंहा	शिव	शौर्व

वैदिक	तिब्बति	हिंदी
मन मानम	मी	मनुष्य
तोक	तुफ तोक	तनय
वामा	बमो	लड़की
मुंड	मू	मुंड (शिर)
मुख	मुख	मुख
क्षार	छा	नमक
स्थलि	चकथाली	बर्तन
धान	द्री	चांवल (धान)
मृतिका	मरिती	मिट्टी
गुहा	गुम्फा	मकान
यव	मुन्यो	जौ

शब्दों की अमूल्यता

विद्वान कहा करते हैं शब्द अनादि है। ऋग्वेद कहता कि वाणि के चार पाद परिमित हैं, इसे मनीषिणि ब्राह्मण

जानते हैं कि उसके तीन पाद बुद्धि रूपि गुहा में स्थित हैं और वाणि के तुरीय स्वरूप को बोली बोल कर प्रकट करता है। (१.१६४.४५)। इसका आशय यह है कि शब्द के सूत्रों को मूल को बुद्धिमान ही समझते हैं, साधारण मनुष्य को इसका ज्ञान नहीं होता। इसके उदाहरण देकर पाठकों को सरल हो जायगा शब्द सूत्र को समझना।

मन्—मन, माना, मनन मनीषिण, मनु, मनुष्य, man, mankind, manhood, mind, mental, manual *mania, maniac, mindful.*

स्थ—स्थान, स्थानीय, स्थन, स्थित, स्थिति Stay, stand, station, standard, statue, stead, stop, stout, store, stool stone.

कृ—कर,—कार, कारु, कारव, कार्य, करण, कर्ता, कर्म, करमु-क्रमु, car, carry, carriage. cart, career, cartography, cartoon, cartridge, carve.

धृष्—धर्षण, धृष्णु, धृष्णव, धृष्माण, धृषन्मना, धम् ध्वस् ध्वस्माना, धस्माना etc. Dis, Disc, distroy, District, distinction, distruction, distribute etc

गम्—गो, गोनाम्, गति, गातु, गमन, अगन्म, Go, gone, gate, goal, goad, golf, game, gobble etc.

अर—अरां, आर्य, आर्यमन् R. Arable, Arrow, arm, army, Art, Artizan, Arkmour, armistice, Armament etc.

इन उदाहरणों से साधित है कि विश्व भाषाओं की विश्व जननी ऋग्वेदिक भाषा है। ऋग्वेद में उन ऋषियों की

रचना है जिनके ऋषि स्थान हिमालय में थे। जिन ऋषियों के स्थानों का वंशों का पता लगा है, उनका वर्णन हो चुका है। वे ऋषि स्थान गढ़वाल में हैं। मूल पुरुषों के बुध्न वहीं हैं, सप्तसिंधु नदी गढ़वाल ही में होकर उत्तर प्रदेश में बहती है। इसलिये सप्तसिंधु देश कहो मूलस्थान कहो गढ़वाल ही है।

व्रता-वृता

ऋग्वेद में ये दोनों शब्द आये हैं, व्रताना, व्रतानि इनके पर्यायि वाचक हैं। व्रताना ऋषियों के सहयोगि दल होते थे, इस अवनि पर सदा एक साथ प्रचंड वायु की तरह भ्रमण करते थे और अपने साथियों की रक्षा करते हुये अमर कीर्ति को प्राप्त हुये।

सनात् सनीढ़ा अवनीरवाता व्रतारक्षंते अमृताः सहोभिः। १.६२.१०

ऐसे सहयोगि वृतानि दल के लिये भी वरण करने की प्रथा राजा की आज्ञा से प्रचलित थी (१.६२.३)। ऐसे व्रता महतो महानि कार्यों को सम्पादन करके अपने राजाप्रजा दोनों से उत्साहित किये जाते थे और साबासि प्राप्त करते थे (३.६.४)। वृत्रासुर के आधिपत्य के समय व्रतानी प्रथा भंग हो गई थी, जब इंद्र ने शर्यणावति पर वृत्रों का जघन किया तो सिंधवों के देश में वृताना ऋषियों को स्वतंत्रता हो गई वे अरिण हो गये (४.४२.७)। इस दल में ऐसे व्यक्ति विशेष होते थे जिनके सुअश्वहों, ऐश्वर्य, बल, अन्न धन सम्पन्न हों और नेता होने के योग्य। ऐसा ही दल मघवा इंद्र का शरीर रक्षक दल भी होता था, जो उसको समर में जाने

को उत्साहित करता था और वह संग्राम में शत्रुओं को पराजय करके उनको धूल में मिलाकर विभूति सम्पन्न होता था (४ ४२.५)। ऐसे वृतान्ताओं को परिज्मा विश्ववेदस भी कहते थे क्योंकि ये समस्त विश्व का ज्ञान रखने वाले सर्वत्रगामि परिव्राजक थे (१०.६३.७) और सप्त महाद्वीपों का पर्यटन करके सुकीर्ति प्राप्त कर दान दक्षिणा देते हुये अपना नाम यश अमर करते थे। सप्त धामानि परियन्ऽमृत्यो दाशत दाशुपे सुकृते १०.१२२.३।

हमने अपने लेखों में पुराण और स्मृति का साक्ष्य देने की आवश्यका नहीं समझी है क्योंकि ये बहुत पीछे के हैं। इनके समय से ऋग्वेद को अर्थ सहित पढ़ना आवश्यक नहीं समझा गया, और केवल वेदध्वनि, वेदिक ऋचाओं के उच्चारण पर ही विशेष जोर दिया जाने लगा। यह समय परिवर्तन का था। दक्षिण भारत के भरत पुत्रों ने ऋग्वेद का अध्ययन किया, उन्होंने उसमें अपने प्रदेश की नदियों, पर्वतों और स्थानों का वर्णन पाया ही नहीं। उन्होंने समझा कि यह उनकी मानहानि है, दक्षिण में सामगान का प्रचार अधिक हुआ, जो यज्ञ ऋग्वेदिक समय में सरलता पूर्वक किये जाते थे ब्राह्मण ग्रंथों के आधार पर बहुत पेचीदे हो गये, वैदिक स्थानों के नामों की सूरत मूरत भी बदलने लगी, जोतिपपुर को ज्योतिर्मठ और ज्योतिर्धाम नाम दिया गया। देवमाना और दिवः लोक को बद्रिनाथ नाम से प्रसिद्ध किया गया। स्वावाश्य वर्णित सप्त सरिताओं के स्थान पर निम्नलिखित श्लोक की रचना की गई :—

गंगेश्च जमुनेश्चैव, गोदावरि सरस्वति नर्मदा सिंधु कावरि जलेस्मिन् संनिधंकुरु।

इस तरह पर समस्त भारतवर्ष को आर्यावर्त मानना तो ठीक ही हुआ लेकिन लोग अपने मूलस्थान की सरिताओं, पर्वतों, ऋषि स्थानों को भी भूल गये। शतपथ ने मरीचि पर्वत को या हिमालय को उत्तरगिर नाम दिया, और अलकनंदा (शुतुद्रि) को सदानीरा मानो सदा जल बहाने वालि अन्य नदियां हैं ही नहीं। इसका परिणाम जो होना था हो गया। सभ्य मानव का प्रथम लीला क्षेत्र कौन था, आर्यों का उत्पत्ति स्थान कहां है, ये प्रश्न जटिल हो गये हैं। इस छोटि सी पोथि मे इन प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न किया गया है।

यदि गढ़वाल को सप्तसिंधु देश करार दिया जाय तो प्रश्न यह खडा होता है कि जिन महान् विद्वानों ने मूलस्थान को खोजने का प्रयास किया है वे अपने कार्य मे सफल क्यों नहीं हुये। इनमे पश्चिमि विद्वान और भारतीय विद्वान हैं। पश्चिमि विद्वानों का असफल होना निश्चित था क्योंकि उन्होंने योरप के प्राचीनतम् साहित्य (classical literature) पर विश्वास ही नहीं किया कि मानव जाति के उत्थान के भू भाग हिमालय मे हैं। (mankind sprang from the regions of Himalayas)। उन्होंने ऋग्वेद को सबसे प्राचीन ग्रंथ स्वीकार किया और अध्यापक मैक्समूलर ने तो ऋग्वेदों के सम्बंध मे कहा "यह वही है जिसे मैं शब्द के वास्तविक अर्थ मे इतिहास मानता हूं। जो इस अत्यंत एतिहासिक पुरातन ग्रंथ समूह मे परिश्रम करना पसंद करता है उसे खोज करने को अगणित बातें मिल जायेंगी। यह मेरा निश्चय है कि मनुष्यों या आर्य मानव जाति का अध्ययन करने के लिये वेदों के समान महत्वपूर्ण और कोई दूसरी वस्तु नहीं है"।

मैक्समूलर ने वेदों की प्रसशा तो की और उनसे वह प्रभावित भी हुआ लेकिन मूलस्थान को ढूढने मे उसने खुदानों के द्वारा खोजने के अधुरे प्रयत्नों को अधिक महत्व दिया। किसी भी अज्ञात भूभाग की खोज में उसकी नदियॉ और पर्वत, महापुरुषों के स्थान वहा की विशेषतायें महान् सहायता पहुचा सक्ते हैं। ऋग्वेद मे नीचे लिखे नदियों के नाम आये हैं,—

(अ) गगा, यमुना, सरस्वति, शुतुद्रि, पुरुष्णि, असिक्नि वितस्ता, आर्जिकिया, ऋगुही, सुषोमा, तुष्टामा, सजु, सुसर्तु रसा, श्वेत्या, कुभा, मेमु, अरदूवृधा गोमति, ऋजीति, रशति। इन २१ नदियों के नाम प्रियमेध ने दिये हैं।

(ब) शर्यणावति और आर्जिकिया का उल्लेख काश्यप मारीच ने किया है। पर्वतों में बहने वाली शर्यणावति पर वृतासुर का वध उस स्थान पर हुआ जहा उसमे एक दूसरि नदी मिलती है। वह दूसरी नदी आर्जिकिया है। इन दोनों नदियों के निकट अति उत्तम सोम उत्पन्न होता है। इनका जल भी पुरुष्णि के द्वारा सिंधु मे मिलता है।

(स) शुतुद्रि और विपाशा का वर्णन विश्वामित्र ने किया है।

(द) दृपद्वति, आपयायी, सरस्वति का वर्णन देववात देवश्रवा ने किया है (३ २३ ४)।

(ई) असूर्या और अंधसि का वर्णन वसिष्ट ने किया है।

(फ) रसा का वर्णन सरमा ने किया है।

(ज) रसा, नितभा, कुभा, मेमु सिंधु, सरयु, पुरुष्णि का वर्णन श्यावाश्व ने किया है।

सरस्वति, पुरुष्णि, सरयु सिंधु के नाम बहुत अधिक ऋचाओं मे मिलते हैं।

ऋग्वेद मे सरस्वति ही एक ऐसी नदी है जिसको कवियों ने अनेक नाम दिये हैं। उसके तट पर विद्यालय होने से उसे सुमति पद मिला, वह विन्दुसर से निकलती तो उसको पौराणिका ने बिंदुमति कहा, सर मे सोने वाली होने से सरस्वति, यह दिखलाई नहीं देने के कारण असूर्या, उसका भूमि के अन्तरिक्ष मे बहने से उसको कह दिया अधसि-अंधेरे मे चलनेवालि, उसके किनारे बगड मे पत्थरों के खन्ड पड़े रहते हैं तो उसको नाम दिया गया दृषद्वति, वह पानि मे निवास करती है तो उसकी पदवी हो गई आपयायि अर्थात् जल मे व्याप्त होने वालि, पर्वत मे उसकी जलधारा बहुती हुई दिखलाई देती है तो कवि ने कह दिया पैंदि की शृखलायें टूट गई हैं, उसको तो मुक्ति मिल गई स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है। वह तो पाश बद्ध थी विपाशा हो गई है। मैक्समुलर ने भी विपाशा का अर्थ किया free from fetters परंतु वह उसको खोजने मे असमर्थ रहा। ये सब नाम ठीक ठीक घटते हैं बद्रिनाथ की सरस्वति पर।

गगा, यमुना तो सर्वत्र विदित है, इन पर भी ध्यान दिया जाता तो उत्तर प्रदेश के बाहर मूलस्थान को खोजने का परिश्रम न करना पड़ता।

यही बात नितिभा के विषय मे भी कही जा सक्ति है, सभि जानते हैं नीति घाटी गढ़वाल म है। अलाका को अलकनंदा कहते हा हैं।

इसलिये सरस्वति गगा, यमुना, नितभा और अलाका

की भूमि का निरीक्षण करने पर संभव था मूलस्थान का भेद खुल जाता।

पर्वतों के नाम पहिले लिखे जा चुके हैं। सप्त पर्वतों के अतिरिक्त और भी पर्वत हैं। तिरश्चिर् तान कहता है त्रि सप्त सानु संहिता गिरीणाम्। ८.९६.२ जैसे २१ नदियां हैं, २१ ऊंचे पर्वत भी हैं। तिरश्चि ने श्यावाश्व की तरह कहा है कि सप्त सिंधव तो मनुष्यों के लिये सुपारा होने चाहिये। तिरश्चि का निवेदन इंद्र के प्रति है। उसके सूक्त की प्रथम दो ऋचायें दर्शा रही हैं कि जिस देश में त्रिसप्त सानु गिरि हैं, उसी देश में अस्मा आपो मातरः सप्त सिंधवः" भी हैं। ऋषियों ने अनेक बार इंद्र को अद्रिव नाम से सम्बोधन भी किया है। इससे मूलस्थान पर्वतीय देश है। यह भी एक कला थी मूलस्थान का अन्वेषण आरंभ करने के लिये।

ऋषि स्थान, ऋषियों के स्थानों के नाम मूल पुरुषों के लेख में दिये गये हैं। गढ़वाल पर्वतीय प्रांत है। गंगा, यमुना, नितभा, अलकनंदा इत्यादि उसी प्रांत की नदीयां हैं, इसलिये ऋषियों के ग्राम भी यहीं मिलने चाहिये। इस समय गढ़वाल की राजधानी पौड़ी है, यहीं से प्रातःकालीन उषा का अद्भुत दृश्य बद्रिनाथ के चतुर्भुष्टि शृंग पर दिखाई देता है, यहां प्रातःकाल में सूर्योदय विशेषकर हेमंत ऋतु में अति सुहावना, मनको लुभाने वाला होता है। जल भी यहां का स्वादिष्ट और बल वर्धक है। हिमालय का अति रमणीक दृश्य सदा सामने रहता है जैसा कि देविधुरा में। प्रकृति ने उसे नैनिताल और अल्मोड़े की अपेक्षा कितना ही गुणा वरों में वर बना रक्खा है। साधारण कृषक भी पढ़ता है

"नांदलो मोना को कंदलो"१। इसी सुवर्ण तुल्य भूमि का केन्द्र है पौड़ी। यदि ऐसी श्रेष्ठ रमणीक भूमि पर किसी वैदिक ऋषि की छाप न मिलती तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहता और हम समझते कि वे सन्यास मार्गियों की तरह कंदराओं में रहते रहे होंगे। लेकिन पौड़ी स्वयं सन्तानतलाती रहती है कि वह तो पायु ऋषि की प्रिय पुत्री है और अपने पिता की अमर कीर्ति का अमिट स्मृति चिन्ह। देव सविताः पायु देव्य (१०.१००.६) बतला रहा है कि वह सविता देव का भक्त था। धनि, चमुरि मृग अदेवयुओं ने पायु ऋषि को कष्ट पहुँचाया, ये यातुधान थे, इनके नाश के लिये पायु ने उसके वंशजों ने रक्षोहा यज्ञ किये (१०.८७.१-२४)। इस सूक्त में त्रियातुधाना इन तीन अदेवयुओं की तरफ इशारा कर रहा है, उनके ग्राम पौड़ी ही के निकट है, उनके नाम है चमाड़ी, चमराड़ धनक और मरगदाना। मूलस्थान में देववंशियों में और अदेवयु दस्यु जाति के आपस में देवासुर संग्राम होते ही रहते थे। इस लिये मूलस्थान में देव और अदेवों की वस्तियां मिलनी चाहिये। ऐसी वस्तियों के नाम गढ़वाल में मिलते है।

पायु की पौड़ी इटो की इटोसी, कवि की कविस्थलि, उचथ्य का उथाकोट, निरयावर का वस्यूर, ऋषभि की रिखाड़ी इत्यादि अनेक ऋषिस्थान गढ़वाल में है, यहां पुष्ट

---

१ नांदलस्युं पट्टीका नाम है। यहां अन्न की उपज बहुत अच्छी होती है। चमुरि, धनि, मृग इसी कारण पायन मामतेयों को कष्ट पहुँचाते रहे। पायन मामतेयों की रक्षा' नामक लेख देखो।

पीशाए करने की जरूरत नहीं है।

ऋपियों के देश की विशेषता है पंच तीर्थ और सगम वत्स काराव कहता है कि पर्वतों की गहरि घाटियों मे जहाँ नदियों का संगम है, वहीं वेदों मे प्रविष्ट होकर विप्रों का जन्म होता है। पच तीर्थ पच प्रयाग गढवाल की विशेपता है। इनको कोई अवतक न बदल सका, न मिटा सका। इसलिये ऋग्वेद मे वर्णित नदी, पर्वत, ऋपियों के स्थान, पचतीर्थ और संगम मूलस्थान को बतलाने में सहायक होते हैं। केवल सप्त सरिता या एकादश नदियों को येन केन प्रकारेण पंजाब मे दिखला कर यह कहना कि पंजाब सप्तसिंधु देश है और आर्य मध्य येशिया से आये भरतवश के बालकों को भूल भुलयां मे फसाना है।

ऋपियों के देश की दूसरि विशेषता है सोम वनस्पति। वे सोमरस पीते थे इसको सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं। मौजो ऋपि मुंजावत पर्वत मे रहता था, उसने स्पष्ट शब्दों मे कहा है कि जो सोम वनस्पति मुंजावत मे उत्पन्न होता है उसका भक्षण शरीर के अंगों मे उसके रस को पहुंचाकर जागृति उत्पन्न करता है।

सोमस्य मोजवतस्य भक्षो विभीद को जागृविः १०.३४ १। महाभारत कहता है कि मुंजावत पर्वत हिमिगिरि के पृष्ट पर है। और उमापपि भगवान वहाँ तपस्या करते है। सोम हिमाच्छादित पर्वतों की घाटियो मे नहीं उगता है। सिधु नदि सोम वनस्पति की माता अवश्य है लेकिन अलकनदा असल मे सिंधु हुई है विष्णु प्रयाग से जब उसमे नितभा बहने लगती है। जहा शीत की अधिक प्रधानता है, वहां सोम उत्पन्न नहीं होता। इसलिये सोम की मुंमावत पर्वत की

खोज वहां करनी पड़ती है, जहां का सोम वैदिक समय में अति उत्तम माना जाता था। यह भूमि वह है जहां शर्यणावति नदी, शरण ग्राम, शर्यणा पर्वत हैं। ये सब चंद्रवुप्न में हैं। उसी प्रांत में मंजुकूला नदी और मंजूलि ग्राम भी है। ये सब देवस्थल पर्वत के उस पक्ष में हैं जिसे इस समय मौदाडस्युं कहते हैं और मौदाड़ि यहां का स्थानि ग्राम (थानिगांड) है। ये दोनों शब्द मौजों के संबंधित अपभ्रंश रूप हैं। संग्रह कर्त्ताओं ने मौजों ऋषि का मौजवान् ऋषि बना दिया और महाभारत में मुंजावान् पर्वत। ऐसे परिवर्तन काल देश व्यक्तियों के कारण हुआ ही करते हैं। मंजुकूला के स्रोत के निकट उमापति का शिव मंदिर भी है जिसका वर्णन महाभारत में है१। शिव मंदिर के कारण साम्प्रति इसे देवता को डांडो (देवस्थल पर्वत) कहते हैं। थौतलि (देवस्थलि) भी यहीं है।

सोम चन्द्रवुप्न ही में नहीं होता, यह सप्त सिंधवों के शीतोष्ण घाटियों और पर्वतों में भी होता है। ऋग्वेद के नवम मंडल में सोम वनस्पति और राजा सोमदेव संबंधि

---

१ गिरिः हिमवतः पृष्टे मुंजावन् नाम पर्वतः। तप्यते यत्र भगवान् तपो नित्य उमापति। महा भारत १८.८.१ वैदिक काल में मंदिर नहीं थे। इस स्थान में इंद्र का स्मृति चिन्ह था। नदी का नाम मुंजावति था लेकिन उससे गौतम की तृपिक गायों के लिये कूल निकाल कर पुष्कर बनाया गया तो उसको मंजुकूला कहने लगे।

गीत है। ऋचाओं के सग्रह कर्ताओं ने सोम को अधिक महत्व दिया है और पवमान सोम नामकरण करके इसका मडल ही पृथक करने की आवश्यक्ता समझी। हम भी इसी मडल की सहायता से सोम की सप्त भावरों का होना सिद्ध करेंगे। अयत्सार ऋषि कहता है यह सोम जो सूर्य के सदृश चमकता हुआ द्रोण कलषों में जाने को दौड रहा है वह तो सप्त पर्वतों से आया है, वहा से लाया गया है—

> अय सूर्य इवोपदृग् अय सरासि धावति।
> सप्त प्रवत आ दिवं। ६.५४ २

शत वेखान सा कहते हैं—कि हे सप्त सिंधवो। तुम्हारे ही शीर्षो से सोम गमन करता है—

> तवेमे सप्त सिंधव प्रशिष सोम सिस्रते। ६.६६ ६

आदृष्ट भाषा ऋषि कहता है कि जिस तरह मातायें नव जात शिशु को जानकर धाइयों की सहायता से वढाती हैं, उसी तरह सप्त स्वसार सरिताओं के सप्त प्रांतों मे जन्म धारण करनेवाले सोम वनस्पति के रस को निधान् पृश्नि स्त्रियाँ उसकी वृद्धि करती हैं—

सप्त स्वसारो अभि मातर. शिशु नवं जज्ञानं जेन्य विपश्चित्। ६ ६६ ३६ करयप ऋषि कहता है "हे सोम जिस तुझको सप्त नदियों के तटों से लाये हैं, उसे दशों अगुलियों के द्वारा उच्चे तृपला के ऊपर अव्वे वारे मे मार्जन कर रहे अर्थात मरोड मरोड कर सोम रस निकाल रहे हैं—

> दश स्वधाभि अधि सानो अव्ये मृजंति त्वा नद्य. सप्त- यह्वी.। ६.६२.४

त्रित ऋषि ने ही सोम रस छानने के लिये तृपला का निर्माण किया था और इस कारण त्रित नाम से प्रख्यात हुआ, वह भी कहता है कि सोम को सप्त मातायें जन्म देती हैं, वह तो सप्तधामों (महाद्वीपों) में भी प्रिय हो गया है, जहां ऋषियों ने यज्ञ का प्रचार किया है और वह शिशु महान् कर्मों को करने का मूल कारण होता है:—

क्राणाः शिशुः महिना, यज्ञस्य सप्त धाममि अध प्रियम्, जज्ञानः सप्त मातरो। ९.१०२.१-४

इसलिये सहस्रों ऋषियों का पेय पदार्थ जिस सोम

वनस्पति से बनता था, उसका जन्म स्थान चंद्रकुम्न, शर्यणावत-पर्वत, मुंजावत पर्वत है जो आदि काल से प्रसिद्ध है, ये पर्वतीय देश गढ़वाल में है। सोम सप्त सिंधयों के देश में भी होता है। हमारे पूर्वजों ने पंजाब को सप्त सिंधयों का देश माना ही नहीं है। जो सप्त सिंधयों का देश है, वह सप्त पर्वतों का त्रिसप्त पर्वतों का भी देश है। पंजाब पर्वतीय देश भी नहीं है।

यजुर्वेद भी पांच नदियों के देश का वर्णन करता है। यह पंजाब ही है—

पंच नद्यः सरस्वतीमपि यंति संस्रोतस सरस्वती पंचधा सो देशाऽभवन् सरित्। यजु० ३४.११

पंजाब तो पांच नदियों का देश है, और इंदु नदी और सरस्वति तो उसकी पश्चिम और पूर्वि सीमाओं को बतलाती है। पंजाब को सप्त सरिताओं के देश होने की कल्पना करना गलत है। ऋग्वेद इसका समर्थन नहीं करता। इस समय तो भरतवंश के अबोध बालकों को ऋषियों के देश का गलत

भूगोल और इतिहास पढ़ाया जा रहा है। क्या यह बंद हो सकेगा ?

तीसरी विशेषता ऋषियों के देश की है ऋषियों के वंश वंशज। वे सामने खड़े हैं, कहते रहते हैं, हमको पहिचानो, हमारी दीन हीन दशा के कारण हमारी तरफ तो कोई दृष्टिपात भी नहीं करता क्योंकि देश के गण्यमान्य तो योरपीय कल्पना को अपनाये हुये हैं। ऋग्वेद के वाक्य पर ध्यान दो 'तं पाकेन मनसा पश्यमंति तस्तं माता रीड़िह स स रीड़िह मातरं। अपनी माता को हमको उसी तरह रीड करो।

हमतो शब्द हैं, सृष्टि रचना के आरम्भ में शब्द ही से तपसा, ऋत, सत्य प्रगट हुये, उसके पश्चात् सृष्टि हुई। शब्द सूत्रों पर ध्यान दो। "ऋतं वदन् ऋतं द्युम्नं सत्यं वदन् सत्यकर्मने श्रद्धया वदन" महान् महोय माता के महत्वपूर्ण शब्द हैं। इनको बीजमंत्रों के रूप में रीड करो। देखो हम कैसे शब्द हैं—त्र्यंमाना-देयमाना - मनु-मानव; गोदा -गोदी-गोधु - गादई - गोधाल;-जिष्णु जोष्याणा-जोषि; दभीति-डोभ-डोभाल पथ्यापूषा-पाथ-पंत पांथरि; कवि-कवतोलि-कवत्वाण; हर्यत-हयालि-ह्याल; देवा-देवराणा - देवराणि, पायु-पोड़ी - पायथ ममतेय (ममगांई); अश्विनि - असथालम्यु - असवाल; श्यावाश्व-शावलि-सावित्री; शास-शासों-शासनि (इड़ा); इड़ा-इड़ियाकोट-इड़कोट-इड़वाल; जेता-जेतास्थलि-जैनोलि-जेतोलस्यु-जैनोला-जैतोलगांऊ मन्यु-मनकोट - मन्यारी - मनराल - मन्यारस्यु; कुंभज-कुभा-कुंभड़ि; भौम-भूरि-भरदुलि, भरदुला, सुनंभर-सुदई-सुदरियाल, वामदेव वमोलि-वमोला; बुध-बुध्न-बधान-बधाणि; सत्वनां-सत्युड़ाल सति-सतोड़ी-सतिथपल्याल; यारुणि-वडुज-वडुणि; इट्टो-इटोसि

इटवाल, चैनो-चैनोलि विनसरि-विनसर; पैजवन-पजेणा-पजई; मरुत-मरः - मरा-महरा - महर; सहसः-सहमनाना-साह; स्थौर-स्थरालि- थारू; शैल-शैलपि शैली शैल-शैली शैल्वाल-शिल्मणा-शलरोट; धरण - धयाड़ि - धयानि शंयु शंयुकुटी-संगला कोटी-संगेला; तिरश्ची-तिरश्च्याइंद्र-तिरस्वाल; कृष्ण - कृष्ण पर्वत-कृष्णा (काला डांडा, काला भंडारि, काला ब्राह्मण); च्यवन-चवनाड - चमनाड-चौहान; परशु-पराशर-परासु-फरासु-परासि-फरासि; मौंजो-मंजुपूला-मंज्यूलि मंज्याड़ि सर्व प्रथम इन शब्दों को पापेन मनसा, ऋतं वदन् ऋतं द्युम्न से रीड करो, उसके फल स्वरूप तब ही स्वमाता वेदमाता को रीड कर सकोगे।

तीन विशेषता—पंचतीर्थ, सोम, ऋषि वंशों के साथ साथ बुध्न, अश्नबुध्न, अहिर्बुध्न, चंद्रबुध्न, धर्विबुध्न उन्चा-बुध्न को न भूलोगे तो स्वमाता के दर्शन अवश्य हो जायेंगे और तब विदित हो जायेगा कि स्वमाता ही वेदमाता भी है।

गव्यांग, नाभी, कुटि, दारमा में तीन ही ऋतु होती हैं ये ऋतु हैं शरद, हेमंत और वसंत।

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमंतान् शतं वसंतान्१। १०.१६१.४।

यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यहाँ शरद ऋतु में ही आनंद दायक जीवन व्यतीत होता है, हेमंत ऋतु में तो यहाँ रहा ही नहीं जा सका और वसंत भी कष्टप्रद होता है। इसलिये प्रजापति ने शतायुषा के संबंध में शत शरदों का ही भोगने का वर्णन किया है।

जब आर्य जाति शीत प्रधान प्रांतों से नीचे के देशों के निवासि होने लगे तो उन्होंने पांच ऋतुओं को स्वीकार किया और इसी आधार पर संवत्सरीणां तिथि पत्र का भी जन्म हो गया जिसको आज दिन भी पंचाग कहते हैं। सर्व साधारण भी पांच ही ऋतुओं को मानता है। येक ऋतु को यह हमेशा चतुर्मास-चौमास ही कहता है और उसके गीत भी गाता है जिसको ग्राम निवासि चौमासा कहते हैं।

पंचारे चक्रे परिवर्तमाने"। १.१६४.१३ पंच पादं पितरं द्वादशाकृतिं। १.१६४.१२ इसलिये द्वादस मास के पंचपाद माने गये हैं।

ऋतुओं को सम बनाने के लिये विद्वानों ने दो दो मास की प्रत्येक ऋतु को सूर्य से उत्पन्न हुआ माना और उनको यम-यमल नाम दिया।

षडिन् यमा ऋषयो देवजा इति। १.१६४.१६।

तीन ऋतुओं का वर्णन साबित करता है कि विष्णु लोक वद्रिनाथ, अलौकिक महिमा की अलाका की भूमि, हिमाच्छादित पर्वत की घाटियों सभ्य मानव की उत्पत्ति का स्थान है; न कि पंजाब, मध्य एशिया योरप या उत्तरी ध्रुव देश।

नोट—हमारी कन्या जो हाई स्कूल में पढ़ती है, उसने हमें बतलाया कि पाठ्य पुस्तकों मे तो आर्यों का मध्य ऐशिया से आना और पंजाब में बसना लिखा है और पंजाब को ही सप्तसिंधु देश मानते हैं। तब यह लेख लिखा गया है।

हरीराम धस्माना
बड़ा चांदगंज, लखनऊ।

---

१ हिमाच्छादित प्रांत में शरद ऋतु छः महिने की होती है, ज्येष्ट से कार्तिक। हेमंत ऋतु तीन महिने मार्गशीर्ष, पौष, माघ। बसंत तीन महिने, फाल्गुन, चैत्र, बैसाख॥



* जल्प्या १०.८२.७ *

जिस प्रलयकारी जलवर्षण का शत पथ ब्राह्मण ग्रन्थ में जलप्लावन नाम से वर्णन किया गया है, पुराणों में प्रलय, जिन्दावस्ता में तुषारयुग, योरप में हिमयुग, बाइबल में नोअ की नाव और डेल्यूज, ऋग्वेद में उस प्राकृतिक घटना को जल्प्या नाम से सम्बोधन किया गया है। इस जलवर्षण से पेश्तर के समय को प्रथम युग और पूर्व युग कहते हैं। इसके पश्चात् समय को उत्तर युग (१० ७२ १ २)। जल्प्या की कथा वार्ता को ब्रह्मकिल्बिष के निवासि भी जानते थे। ब्रह्मजाया के सम्बन्ध में जो विवाद हुआ था उसकी उपमा प्रलयकारी तूफान से दी जाती जो सलिल (जल) और मातरिश्वा (वायु) यहन से हुआ था और जिसको बुद्धिमानों ने पार किया१।

जब सिलसिले से आठ जलवर्षण हुये और उत्तरी ध्रुव और दक्षिण ध्रुव से समुद्र ऊपर को उठे और महान् देवलोक हिमालय पर्वत की भी डूबने की सम्भावना होने लगी तो आनन्दवर्धक साहस के साथ पर्वत श्रेणियों को पर्वतीधारों को छनकार दिया गया, छिन भिन्न किया गया ताकि हिमालय के उत्तर की तरफ जिस जल ने शर्यारिया और त्रविष्टप को वालुकार्णव और जलनिमग्न कर दिया था वह जल नदियों के गर्भों में समा जावे और दक्षिण की ओर बहे। यह कार्य

---

१ तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपार सलिलो मातरिश्वा। १०.१०६.१।

हरिनिपगु की अध्यक्षता में हुआ१। जिनका स्थान माना वर्षे (माना में है१। पर्वत श्रेणियों को जहाँ जहाँ काटा गया था उनको छीना अब भी कहते हैं, इन नीची जगहों को ग्वाल भी कहते हैं; जैसे घील छीना, चाडे छीना सतेड़ा ग्वाल इत्यादि। श्रोयिज कविवान तो इन्द्र की प्रशंसा में कहता है "हे मृरनायक हर नीले अश्वों में रमण करने वाले इन्द्र! तूने तो ६६ अमर्त्य कतरों-काटछांट से जलों को संधि करने से रोका२"। यदि पर्वत काटे न जाते तो दोनों तरफ के प्रलयकारी जल हिमाचल की पर्वत श्रेणि पर मिल जाते और माना प्रदेश व पद्रिवन भी जल निमग्न हो जाते और जो सूर्ते

---

१ अद्रिभिदुघन्–पर्वतों को छन करके, काट करके वाताप्यम् पृधे गोरममद्–तूफानी जल बड़े वेग से शब्द करता हुआ गमन करने लगा बहने लगा १.१२१.८। वाताप्यम्–वात-आपं, तूफान में जल और वायु दोनों थे अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सं। हरी यत्ते मंदिनं दुघन् पृधे गोरभसम् अद्रिभिः वाताप्यम्। योधान उत्सं–येकत्रत जल से युद्ध किया गया, अद्रिभि दुघन्–पर्वतों को काट कर।

२ त्वं वृरो हरितो रामयो नॄन् भरत चक्रमेतशो नायमिन्द्र। प्राप्यपारं नवतिनव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयुज्यन्॥ १.१२१.३। नवतिनव्यानां पारयं, पृश्व- आचार्यों में इस्तेमाल हुआ है—नव नवतिच पार्न् २.१४.४ नवनवतिं पुरो ७. ६६.५।

सहायता देवास देववशियों ने की। वे पशुओं के साथ आये ओड भी अपने साथ लाये और वन के वृक्षों को काटकर उनके लिये लकडी के मकान पर्णकुटिया बनवाई। ये झोपडे पर्वतों के वक्षस्थलों-ढालों मे बनाये गये। इसलिये इनको आजदिन भी गढवाल में वाखली (वक्षरण) कहते हैं। अच्छे सुन्दर जल स्रोत इनके निकट थे। वहाँ जो कपटी मनुष्य थे उनको मुछेलों (जलती लकडियों) से भयभीत करके भगा दिया गया२। शतपथ मे वर्णित मनोरवसर्पण शब्द भी दर्शाता है कि मनु को भी उत्तरगिरि में पर्णकुटी में शरण मिली, इनके लिये भी वैसा ही प्रवध हुआ जैसा कि प्रवध भागते हुये लोगों के लिये पतग के अधीनस्थ अधिकारियों ने किया था। सभीची कर्मचारी वे थे जो साधारण लोगों के लिये प्रवध करते थे और विपूची कर्मचारी उनको कहते थे जो श्रेष्ठजनों के लिये विशेष प्रबंध करते थे। ऐसे अधिकारी उपनिवेशों में भी कार्य करते थे।

माना वर्ष को जो लोग गये उनके सवध मे कुछ वर्णन ऋग्वेद में हमको मिला है उस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है।

चरंत=मार्गों पर चलने वाले। अनिपद्यमाना=जो बिना निवास स्थान के थे-पैर रखने को भी जिनको स्थान नहीं था। मरीचि के वंशज मरीचा-मार्छा ॥

२ देवास आयन् परशुंविभ्रन् वना वृश्चन्तो अभि विड्भिः आयन् नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीट मनु तद्दहन्ति ॥ १०.२८.८ विभिः=ओड=कारीगर सुद्रवं=सुन्दर जल।

विष्णुप्रयाग में नीती घाटे से नितमा नदी आकर अलका विष्णुपदी से सगम करती है। जो लोग बद्रिनाथ की भूमि को गये इस लिये कि वहां उनको सरण मिलेगी वे एक ऐसे स्थान पर पहुंचे जहाँ से उन्होंने माना ग्राम को देखा। उसे देखकर उनको प्रसन्नता हुई और प्रलयरूपी समुद्र से बचने के लिये आर्य स्त्री पुरुषों के युगल जोड़े सीधे घूमघुमाव के रास्तों को त्याग कर अपनी सामर्थ से सिपर्क हुये तीर की तरह माना में विद्यमान होने के लिये दौडे१। ब्राह्मणों के विष्णु भक्त जोडे जब यहाँ पहुचे तो उनका किस तरह सत्कार हुआ और उनसे कैसा बर्ताव किया गया उसका वर्णन आदित्य ऋषि के शब्दों में किया जाता है—"ब्रह्मज्ञानी आप वेदज्ञ स्त्री पुरुषों के जोड़ों को हम सबसे पहिले नमस्कार करते हैं। आप पथिकों की दशा में यहां आये हैं आप सब अमरकीर्ति के ऋषियों के पुत्र हैं, हमारे प्रार्थना को सुनिये, उसे स्वीकार कीजिये और हमारे दिव्याते धामानि में ठहरिये। आइये अपना ही स्थान समझ कर विराजिये और हमारी ऐश्वर्य वृद्धि के लिये शुभ आसन पर बैठकर थकावट दूर करिये आराम करिये-स्वस्थ हो जाइये। देव भक्त देवों को चाहने वाले माना निवासियों ने यम की तरह माना में आये हुये इस ब्रह्म वर्ग का पालन पोषण किया।" ये पचजना पाचवर्शा के थे और उनके साथ चतुष्पद भी थे। इनको पांच ऊंचे स्थानों में जगह दी गई। तब उनसे निवेदन

१अपश्यं ग्रामं वह मानं आरात् अचक्रया स्वधया वर्तमानम्। सिपत्वर्य प्र युगा जनानां। १०.२७.१६ मानं ग्रामं अपश्यम्—माना ग्राम को देख कर, वह—वहन किया-दौड़े।

असूर्ते२ वहाँ प्राण रक्षा के लिये इन्द्राविष्णु की शरण में आये थे उनका भी नाश हो जता। श्रुति-वेदों के ज्ञान और वेदों से अनभिज्ञ असूर्त-असूर दोनों श्रेणियों के लोगों की प्राण रक्षा जल्प्या के भयंकर कोप .से कनकाचल के माना में उनको वहाँ आश्रय मिला।

हिमलय की नदियों के गर्भों में जल्प्या का जल समा गया था और उन विश्वे देवा-देववंशियों की रक्षा हुई थी जो विष्णु के चद्रिवन में येकत्रत हुये थे और जिन्होंने अपने को विष्णु के केन्द्रीय स्थान में उसके आश्रित होकर समर्पित कर दिया था३। देववंशि ऋषि इत्यादि की जीवन रक्षा भी पर्वतों को छिन्न-भिन्न करने से हुई। जो अन्य लोग भी हिमालय के उचे स्थानों तक पहुँच सके वे भी इसी कारण यच सके।

---

२ असूर्ते सूर्ते रजसि निपते ये भूतानि समकृरावन्नि माने। १०.८२.४

रजसि = चमकनेवाला-कनकाचलि हिमालय। भूतानि=भूतकाल में जन्मे लोग अर्थात् पूर्व युग के। माने समकृराघन्न=आश्रय-शरण प्राप्त हुये माना में। घृतमेने अजनन् नम्नमाने=जलवर्षण के समय माना में प्रकट हुये मानो उनका दूसरा जन्म हुआ माना नाम के स्थान में १०.८२.१।

३ तामिद् गर्भं त्रथयं दध्र आपो यत्रदेवाः समगच्छंत विश्वे। अजस्या नाभावध्येकमर्पित १०.८२.६।

केदारखण्ड के अनुसार हिमालय में समुद्र का प्रादुर्भाव विष्णु प्रयाग में हुआ अर्थात् दक्षिणी ध्रुव से प्रलयकारी जल विष्णु प्रयाग तक पहुँच सका। पतंग प्रजापति ऋषि के अनुसार भी यही सिद्ध होता है। वही उस समय हिमालय प्रदेश का प्रजापति रहा होगा। वह कहता है "असुर की माया से जो जल एकत्रित होकर जलाशय सा बन गया था ज्ञानी-समझदार पुरुषों ने उसे देखकर विचार किया और उस समुद्र के तट से मरीचियों के स्थान-प्रांत को देख कर वहाँ जाने की इच्छा करके दौड़ पड़े। पतंग ऋषि ने मरीचीनां-पद वाक्य से स्पष्ट किया है कि जहाँ मरीचि ऋषि के वंशज माछी रहते हैं उस देश को लोग भगे। विष्णु प्रयाग से ऊपर माना और नीति है जहाँ मरीची के वंशज आदिकाल से रहते हैं। जिन लोगों का आश्रय स्थान कहीं नहीं रह गया था, पास और दूर से आये हुए उन पथिकों को अपने पसुओं और कुटुम्बीजनों के साथ पतंग ने जब देखा तो, उसने सध्रीची और विषूची राज कर्मचारियों के द्वारा उनको बसाने में उनके साथ श्रेष्ठ बर्ताव किया[१]। इन अभागे लोगों की

---

१ पतंगमक्तं असुरस्य मायया हृदा पश्यंति मनसा विश्चिपतः। समुद्रे अंतः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छंति वेधसः॥ १०.१७७.१ अपश्यं गोपां अनिपद्यमानां आचपराच पथिभिः चरंत। स सध्रीचीः स विषूचिः वसाना आवरिवर्ति भुवनेष्वंतः॥ १०.१७७.२। आचपराच=नजदीक और दूर से भागे हुये; पथिभिः

(शेष पृष्ठ १०४ पर)

किया गया कि "आप लोग इन ऊँचे स्थानों को अश्वों पर चढ़कर जाइये, आपके पशु वर्तसे वहाँ जायेंगे। इन ब्राह्मण स्त्री पुरुषों के वहाँ रहने से वहाँ सत्यज्ञान का केन्द्र हो गया, बालक पढ़ने लगे और अक्षर वर्ण ककारादि ध्वनी क्रम से पुनः पुनः होने लगी१।" अर्थात् वहाँ पाठशाला की स्थापना माना ग्राम के पड़ोस में हो गई। इस पाठशाला में सप्त अध्यापक श्रेष्ट मरुत शिशवों को अक्षर ज्ञान इस तरह करा रहे थे जैसा कि पुत्रों से घिरे हुये पिता अपने पुत्रों को सत्यज्ञान का उपदेश करते रहते हैं। इससे मरुत और ब्राह्मण या यों कहिये कि गुरु और शिष्य दोनों वर्गों ने एक दूसरे को प्रकाशमान किया और दोनों एक दूसरे को पोषण करने लगे२ कवि ने

१युजे वाँ ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः। शटरावन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आये धामानि दिव्यानितस्थु ॥ १०.१३.१

दिव्यानि धमानि=श्रेष्ट प्रकाशमा धामों में।

यमेइव यतमाने यदेतं प्रवांभरन् मानुषा देवयंत। आसीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवंत इन्दंव नः ॥ पंच पदानिरूपो अन्वरोहं चतुष्पदिमन्वेमि व्रतेन। अक्षरेण प्रतिमिम एतां ऋतस्य नाभावधिं सम्पुनामि व्रतेन= वर्तेन=बटी हुई रस्सी से चतुष्पदि =ार्ये १०.१३.२।३

२ सप्तक्षरंति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीव्रतन् ऋतम्। उभे इदस्योभयस्य राजन उभेयतेते

(शेष पृष्ठ १०७ पर)

यहाँ मन्त्र शब्द का प्रयोग करके यह दर्शाया है कि माना के धन धान्य सम्पन्न कुटुम्बों के बालकों का अध्ययन सबसे प्रथम आरम्भ हुआ, और वही अध्यापकों का पोषण करने लगे।

इन्द्र के वहां आने पर पाचवंशों के इन ब्रह्मवेत्ताओं की प्रजा की प्रार्थना पर माना की श्रेष्ठ भूमि से तृण इत्यादि को श्रम पूर्वक बाहर करके उसी प्रजा के लिये निवासस्थान बनवाये२, जैसा की पतंग प्रजापति ने भी शरणार्थियों के रहने के लिये प्रबंध किया था।

ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि आठ प्रलयकारी जल

उभयस्य पुष्यतः। १०.१३.५ मरुत्वेते=मरुतों की सी तरह शक्ति सम्पन्न।

दूसरी और पाँचवीं ऋचायें संकेत कर रही हैं कि वैदिक समय में अक्षर लिपि का निर्माण हो चुका था क्योंकि ऋषि साफ-साफ कह रहा है कि बालकों को अक्षर ज्ञान पहिले कराया गया। कागज का काम देने के लिये माना की भूमि में भुजपत्र होता ही है। उसका इस्तेमाल भोजन पात्र के रूप में भी होता था। यह तो पेड़ की छाला है जिसके कितने ही पर्त कागज जैसे पतले होते हैं॥

२ यत् पांचजन्यया विशेन्द्र घोषा असृक्षता अस्तृणाद् बर्हणा विपोर्योमानस्य स क्षयः॥ ८.६३.७ अस्तृणात्=तृणहीन करके।

वर्षण प्राचीनकाल में हुये थे और उनके कारण जो उत्स वन गया था उसको तोड़ने फोड़ने को प्रयत्न सबसे प्रथम हरि विष्णु ने किये। अन्य ऋषियों ने जो वर्णन किया है उससे भी यही साबित होता है कि यह समस्त पृथ्वी उत्तर दिशा के आठ जलवर्षणों से और दक्षिण के ९ जलवर्षणों के कारण जल निमग्न हो गई थी और कहीं कहीं ऊंचे पर्वत शृंगों में प्राणियों की रक्षा हुई। हिमालय से उत्तर के प्रदेश बिल्कुल डूब गये थे। यह स्वाभाविक था कि यहां के निवासी भी प्राण रक्षा के लिये हिमालय की शरण में आते। दूरदर्शि सप्त ऋषि सबसे प्रथम ऊँचे स्थानों को जब गये तो उस समय जो दशा हो रही थी उसका वर्णन वसुक ऋषि ने यों किया है:—जब सप्त ऋषि वीरों के सदृश नीचे स्थानों से निचान देशों से ऊपर को आये उत्तरोत्तर आठ वर्षणों का जल येकत्रित हो गया और ऊंचे पर्वत के पीछे से यानी दक्षिण से ९ जल वर्षणों के कारण जल ने दशों दिशाओं में स्थिर स्थिति प्राप्त करली और भोक्ता प्राणि तितर बितर हो गये नष्ट हो गये जीवगण विविध मार्गों से पुकारते हुये चिल्लाते हुये आये। इनके दो वर्ग थे—एक जो पकाकर खाते थे और दूसरे पकाकर नहीं खाते थे अर्थात् मनुष्यों के साथ साथ पशु भी भगे। तब सविता देव (विष्णुदेव) ने आज्ञा दी कि यहाँ घृतमय अन्न इन (शरणार्थियों) के लिये बनवाना चाहिये। पशु तो वृत्तों पर बांधे गये और उनको पूरीपाद् (परसाद हलुवा) दिया१

१ सप्त वीरासो अधरात उदायन्नष्टोत्तरातात समजग्मिरन्ते। नव पश्चातात स्थिविगंत आयन् दश प्राक् सानु वितरंतिऽश्ने ॥ विक्रोशनासो विष्वंच आयन्

(शेष पृष्ठ १०९ पर)

गया जिस पर वे ऐसे चिपट पड़े जैसे चिड़ियाँ पड़ती हैं। यह वर्ताव किया गया इन्द्र और ऋषियों के उपदेश से। उस समय तो विश्व भुवन-समस्त पृथ्वी भयभीत हो रही थी। देववंशी ब्राह्मण ऋषि प्रथम माना में विद्यमान रहे-ठहरे। भय से त्राण होने पर स्वस्थ होने पर ऊपर के स्थानों को गये। जब यह अनुपम पृथिवी तीन तरफ से तप रही थी अर्थात् घाम खूब चमक रहा था पूरियाँ और दो प्रकार के वृवृक बुरसखे (च्यूड़ा और सत्तु) चबेना। उनके समीप वहन किये लाये गये।

प्रथम वर्णन किया जा चुका है, ब्रह्म ज्ञानि ब्रह्मर्षों ने ऊँचे स्थान पर पाठशाला की स्थापना की। यह स्थान सरस्वति स्रोत के उद्‌गम स्थान के ऊपर की भूमि ही स्वीकार करनी पड़ती है॥

पचोतिनेमो वहि पचतुर्ध्व। अयं मे देवः- सविता तदाह द्रुवन्न इत् वनवत् सर्पिरन्नः॥ वृचे वृचे नियता भीमयद्गोः ततो वयः प्रपतान् पूरुषाद। अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वत् ऋषये च शिक्षत्॥ देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन् कृन्तत्रात् एषां उपरा उदायन्। त्रयः तपंति पृथिवी अनूपा द्वावृवूकं वहत पूरीषम्॥ १०.२७.१५-१८-२२-२३. द्रुवन्न=भागे हुये प्राणि, त्रयः तपंति पृथिवी-तीन तरफ घाम और चौथी तरफ छाया, पर्वतों में ऐसा ही होता है पूरुषाद्=परसाद= हलुवा, वृवूकं=बुरखसे (ये दोनों शब्द गढ़वाल में अब भी प्रचलित हैं)

शतप्रभदन* ने प्रलयकाल वर्णन इस प्रकार किया है।

देवलोक पृथिवी तम के कारण आच्छादित देखकर महान कर्म सामर्थ्यवान् ने कर्म करने के लिये अपनी इन्द्रियों को बलवान् करने के हेतु सोमरस पिया। तब उस सचेता इन्द्र के बल के पीछे समस्त देव समाज ने अनुगमन किया। इस तम-अन्धकार के समय ही विष्णु ने अपने ओजसा अंशों के सहित मधुर अन्न साथ में रखकर कूच किया, देवों के साथ आयुधों को चमकाते हुये मघवा इन्द्र भी वृत्र को नाश करने को चले। जो जल सागर मानो स्पर्धा कर रहा था उसे प्रकट रूप से देखकर उस एक वीर इन्द्र ने रण को लक्ष्य करके अपने पुरुषार्थी अनुगामियों से पर्वतों को कटवा कर शत्रु रूपि सागर को जलधाराओं के रूप में नीचे बहा दिया और नाकों को विस्तृत रूप से अपनी चतुराई से ऊपर ही थाम दिया। तमसे घिरे हुये जल शत्रु को काट गिराया और ध्वान्ततम को भी नष्ट कर दिया१। इस प्राणरक्षा के कार्य से इन्द्र सर्व श्रेष्ठ माना गया था।

---

*शतप्रभदन—जिसने पर्वतों के सैंकड़ों भेदन-छेदन देखे उसने उनका वर्णन किया।

नोट्—नाक-पर्वतों की धार, जो नाक जैसे होते हैं दो तरफ ढालुआँ।

१ तमस्यः यावा पृथिवी सचेतसा विश्वेभिः देवैऽनु शुष्मंऽवताम्। यदैत् कृरावानो महिमानं इंद्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमा अवर्धत॥ कर्म करने को जाने के लिये

(शेष पृष्ठ १११ पर)

इन्द्र ने विष्णु से सहयोग करके दो महान् कार्य किये— (१)—तम का नाश किया। (२)—जिस प्रचुर जल ने हिमालय से उत्तर स्थित देशों को धातुकार्णव बनाया था उसको सुखा दिया। उसके इन कार्यों से सहस्रों लाखों प्राणियों को जीवन दान मिला। इन कार्यों की महिमा ऋषियों के द्वारा स्वीकार की गई। यही कारण है कि उसकी स्तुतियों में उसकी वीरता के अन्य कार्यों के साथ इन कार्यों का भी उल्लेख पाया जाता है:—

(१)—इन्द्रेण युजा तमसा परिवृतं बृहस्पते निःअपां औब्जो अर्णवम् २.२३.१८। इन्द्रने वृहत् पालक विष्णु से योग करके तम से घिरे हुये शत्रुरूपि महासागर को नीचे गिरा दिया, नाश कर दिया।

(२)—यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्तिरेणुं बृहत् अर्हरिष्वणि। १.५६.४। शत्रुओं को धर्षण करने वाले इन्द्र ने तम और वृहत् वेग से चलते हुये तूफान को बल पूर्वक

हमारे पूर्वज सोमरस पिया करते थे। अज्ञात एक व्यवाधतं स्पृधः प्रापश्यद् वीरो अभि पौंस्यंरणम्। अवृश्चत् अद्रिंअव सस्यदः सृजत्स्तभनात्राकं स्वपस्यया पृथम्। तमस्यविष्णुः महिमान ओजसाऽशुं दधन्वान् मधुनो विरप्शते। देवेभिःइन्द्रो मघवा सयावभिः वृत्रं जघन्वा अभवद्वरेण्यं॥ वृत्र=जिसने पृथ्वि को वृत जैसा घेर रक्खा था। वृत्रंयत् उग्रो व्यवृश्चत् ओजसाऽपो बिभ्रतं तमसा परिवृतम्। अपां तमोऽवदघ्नसे १०.११३.१-२ ६-७॥

वध किया।

(३)—स्वर्मीहडे यन्मद इन्द्र हर्ष्योऽहन् नि.श्रयांश्चजो अर्णवम्। १.५६.५। जबकि सोम के मद में इन्द्र ने अपार जल सागर को अच्छी तरह हिडहिडा के हनन् कर दिया और प्राणियों को हर्षित किया।

(४)—प्रवह्णा अभिनत् पर्वतानाम श्रंज समुद्रंऽव जग्मुश्राप। १.३१.१-२। इन्द्र ने पर्वतों की कौरवों को उजाडा तब जल शीघ्रता से उस समुद्र को वह गया (जो विष्णु प्रयाग तक उठ गया था)॥

(५)—स प्राचीनान् पर्वतान् दृहत् ओजसा अधरस्थीनम् अकृणोत अपाश्रप। अधारयत् पृथिवीं विश्नधाय सं भस्त-भ्रान भायया द्या अवस्रस। २.१७.५। उस इन्द्र ने प्राचीन पर्वतों को उजाडा, जलरूपि शत्रु को नीची भूमियों में गिराया। समस्त जगत को पोषण करने वाली पृथिवी को अपने कर्म कौशल से भ्रष्ट होने से रोक दिया थाम दिया।

(६)- इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि व्रतानि देवा न मिनंति विश्वे। दाधारय पृथिवीं द्या उतेमां जजान सूर्य उपसं सुदंशा ३ ३२ ८। जलवर्षणों लगातार होने से सूर्य और उषा नहीं दिखलाई दिये—जब इन्द्र ने अंधकार का नाश किया तब ये प्रकट हुये॥

सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है तुषार और हिमवृष्टि के कारण इस भूमण्डल के अधिकतर निवासियों का नाश हुआ है। ऋग्वेद में वर्णन है कि पूर्वयुग में अर्थात् जल्प्या से पेश्तर की विविध प्रकार की सृष्टि मृत्यु को प्राप्त हो गई तो अदिति के सप्त पुत्रों के प्रयत्न से यह मार्तण्ड पृथिवी

पुनः प्रजाओं से भर गई१। १०-७२। उसी सूक्त में जल प्रलय का वर्णन इस प्रकार हैः—

जब देवता गतिशील होकर दूर तक फैले हुये सलिल के तट पर अच्छी तरह स्थिरता से विद्यमान थे तो वहाँ तीव्ररेणु अपने आप आकर नृत्य जैसा कर रही थी। जब भुवनानि-भर्मियाँ जलवर्षण के जल से पूर्ण हो गईं, वहाँ तो समुद्र आ गया और प्रकाश देकर पोषण करने वाला सूर्य गुप्त हो गया अर्थात् तीव्ररेणु और अतिवृष्टि के कारण सूर्य के छिपने से अन्धकार हो गया। प्राणि सूर्य प्रकाश से भी वंचित हो गये२।

उसी सूक्त में उन मानव जातियों का भी वर्णन है जिनकी मृत्यु प्राणहारक जल्प्या काल में हुई। अदिति के परे-पश्चाद भोजन करने वाले उत्तानपाद और दक्ष ने जन्म लिया। तब दक्ष की दुहिताओं की उत्पत्ति हुई। उनसे देवताओं ने अटूट बंधन करके अर्थात् विवाह (देखो १०.८५. १-४७)। करके सुख ऐश्वर्य से रमण किया। आदिकाल में आठ वंश और फिर सप्त वंश इस मार्तण्ड भूमि-मृत्यु लोक में

---

१ सप्तभिः पुत्रै अदितिःउप प्रैत् पूर्व्यं युगम्। प्रजायै मृत्यवेत्वत् पुनः मार्तंडं आभरत्। १०.७२.६ मार्तंड=मरणधर्मा पृथिवी।

२ यत्देवा अदःसलिले सुसंरधा अतिष्ठत। अत्रा वो नृत्यतां इव तीव्रो रेणुः अपायत॥ तीव्ररेणु=प्रलय कारी तूफान। यद्देवा यतयो यथा भुवनानि अपिन्वत। अत्रा समुद्रआ गूढ़हमा सूर्यं अजभर्तन॥

दूर दूर तक फैले३। दक्ष का जन्म अदिति के ठहरने के स्थान में हुआ था४। दक्षेश्वर-दक्ष का स्मारक कनखल में है। उत्तानपाद के वंश और दक्ष प्रजापति की सृष्टि जल्प्या के समय जल निमग्न होकर अंत हो गई॥

वैदिक काल में यम नाम का महापुरुष हुआ है। दुनिया में उसकी ख्याति मनु नाम से अधिक है और उसको मानव जाति का मूल पुरुष होने का श्रेय दिया जाता है। माना में रहने-के कारण और माना से ही विष्णु की सहायता और आदेश के अनुसार तीन नदियों के देश में उसने उपनिवेश की स्थापना की जो भूमि मानसखण्ड नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्वेद में यम के माना में पहुँचना तब हुआ जब जल्प्या का अंत हो चुका और सूर्य अपनी पूर्ण ज्योति से देदिप्यमान दृष्टिगोचर हो चुका था। कुछ ब्राह्मण स्त्री पुरुष भी ऐसे ही समय आये थे१।

उसका नाम यम स्वयं संकेत कर रहा है कि यमनोत्तरी प्रांत से माना को वह आया। यम को यमुना भ्राता भी कहते

---

३ भूर्जज्ञ उत्तानपादो भुव आशा अजायंत। अदिते दक्षो अजायत दक्षात् अदितिःपरि॥ अदितिह्य जनिष्ट दक्षया दुहिता तव। ता देवा अनु अजायंत भद्रा अमृत-बंधवः॥ १०.७२.६।७+३+५ अष्टौ पुत्राणो अदितेर्ये जातास्तन्वस्वरि।

४ दक्षस्य जन्म अदिते उपस्थे। १०.५.७) देवां उपप्रैत सप्तभिः परा मार्तंडमास्यत्॥ १०.७२.८

१ यमे इव यत माने यदेतं १०.१३.२।

है। यमुना को कहते हैं सूर्य पुत्री। ऋग्वेद में स्पष्ट किया गया है कि यह यम विवस्वत का पुत्र है१। पौराणिकों ने मनु को आसमान में प्रकाशमान सूर्य का पुत्र स्वीकार किया है, और मनुवंश को सूर्य वंश। यम के साथ उसकी बहिन यमी, उसके माता पिता और उसका कुमार आये। यम यमी का सम्वाद ऋग्वेद में मौजूद है (१० १०.१ १४)। यम की माता भी नाश होने से बच गई—यमस्य माता न नाश (१०.१७.१)। यम का कुमार—पुत्र कहता है कि उसके निश्पति पिता यम ने पीछे पुराणों को बनाया और पहिले मूल स्थान को आकर उसके पश्चात् अपना शयन घर बनाया। यम के इसी सदन निवास स्थान को देव माना कहते हैं२।

वेद में यह खुलासा किया गया है कि यमनोत्तरी से वैवस्वती से मैं बन्धु बान्धवों सहित माना को आया और वहीं पोषण होने लगे-रहने लगे३। क्यों आये ? मृत्यु से बचने के लिये, जीवन रक्षा के लिये, अपने कल्याण के लिये३।

"जियातवे, न मृत्यवे, अरिष्टतातये" वाक्य खुलासा कर रहे हैं कि यम अन्य ऋमियों के सदृश जलप्लावन के प्रकोप से भयभीत होकर विष्णु की शरण में माणा वर्ष को आया।

---

२ अत्रा नो विश्पति पिता पुराणां अनु वेनते। १०.१३५.१ पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चात् निः श्रयनं कृतम्। इदं यमस्य सादनं देव मानं यत् उच्यते। १०. १३५.६।७ विश्पति=प्रजापति।

३ यमात् अहम् वैवस्वतात् सुबंधवोःमन आभरम्। जीवातवे न मृत्येऽवो अरिष्टतातये॥ १०.६०.१०

पूर्व युग के ऋषियों का दल भीतो जल्व्या के विजली इप्यादि के कड़क तड़क से यह अनुमान करने लगे कि भुन न जावे, उनके रोंगटे खड़े हो गये, शरीर से जलन पदा हो गई तो वे द्रुतगति से चल दिये और उनको देखकर अन्य सूर्ते असूर्ते भी देवलोक मे पहुँचे और इन सबको माना मे आश्रय-शरण मिली१। इस पृथिवी पर दूर देश हैं वहाँ से भी देव असुर इस दूर स्थित देव लोक-विष्णु लोक को आये, अर्थात मानव जाति के सभी कक्षा के लोगों ने शभि देशों के निवासियों ने प्रयत्न किया हिमालय में शरण पाने के लिये२। इसी तरह यम भी अपने कुटुम्बी प्रिय जनों सहित, उसके साथ या उसके पीछे अन्य भी आये होगे। इस पृथिवी के अन्य ऊँचे पर्वतों मे भी प्राणियों को आश्रय मिला होगा जहाँ तक प्रलयकारी जल न पहुँच सका हो। एक विद्वान् ने लिखा है कि ग्रीश (गिरीश) के पर्वतों की चोटियों पर प्रलयकाल मे प्राण रक्षा हुई। पूर्वयुग ही मे प्रताना देवों ने इस भूमण्डल पर आर्य वर्तो की स्थापना कर ली थी लेकिन उन्होंने अपना सम्बध अपने मूल स्थान हिरण्यगर्भ प्रदेश से कभी त्याग नही किया। उनका आदर्श था जिसे वे अपना कर्तव्य ही समझते थे कि वृद्धावस्था उसी पर्वतीय देश में हो और वहीं अत मे मृत्यु हो।

---

१ त आयजंत-द्राविणं समस्या ऋषय पूर्वे जरितारो न भूना। असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि सम कृरावन्नि माने। १०.८२.४

२ परो दिवा परएना पृथिव्या परो देवेभिः असुरै-र्यदस्ति। १०.८२.५

माना में यज्ञ

तुपार हिमयुक्त जलवर्पण बहुत लम्बे समय तक रहा, और इस पृथिवी के चारों कोनों से वृताना ऋषि विष्णु की शरण में आगये। ध्रुव प्रदेशों को जो गये उनका वहाँ रहना असम्भव हो गया था। सभ्य देववंशि सहस्रों की संख्या में माना में एकत्रित हो गये थे। जब लोगों का भय के मारे क्रन्दन करना बन्द हो गया, जब सूर्य अन्द्रि तरह प्रकाश मान हो गया१, जल्प्या का भय जाता रहा, तब आनन्द प्रमोद के साथ हिरण्यगर्भ प्रदेश के माणा वर्ष के विवस्वत के सदन पर यज्ञ हुआ:—

प्राणरक्षा के उपलक्ष में हिरण्यगर्भ के प्रजापति को धन्यवाद देने के लिये यज्ञ किया गया। उसमें स्तुति की गई। १०. १२१।

क्योंकि माना के निवासियों ने प्रलयरूपि आपतकाल में ब्राह्मण ऋषि इत्यादि का पोषण किया था उनको भी प्रशंसायुक्त वचनों के द्वारा शत्रु पराजयकारी यज्ञाग्नि के समक्ष धन्यवाद देते हुये ऋषियों ने कहा "आप माना के पुत्रों ने हम सहस्रों ऋषियों को अन्न देकर दीर्घजीवन दिया है, इसका हमें ज्ञान है। हे शत्रु नाशक अग्ने इन माना निवा-

---

१ यं क्रंदसी अवसा तस्थमाने अभ्यैक्षेताम् मनसा रेजमाने। यत्राधि सूर उदितो विभाति १०. १२१.६।

पूर्व युग के ऋषियों का दल भीतो जल्या के विजली इत्यादि के कडक तडक से यह अनुमान करने लगे कि भुन न जावें, उनके रोंगटे खड़े हो गये, शरीर से जलन पदा हो गई तो वे द्रुतगति से चल दिये और उनको देखकर अन्य सूर्ते असूर्ते भी देवलोक मे पहुँचे और इन सबको माना मे आश्रय-शरण मिली१। इस पृथिवी पर दूर देश हैं जहाँ से भी देव असुर इस दूर स्थित देव लोक-विष्णु लोक को आये, अर्थात मानव जाति के सभी कक्षा के लोगों ने शभि देशों के निवासियों ने प्रयत्न किया हिमालय में शरण पाने के लियेर। इसी तरह यम भी अपने कुटुम्बी प्रिय जनों सहित, उसके साथ या उसके पीछे अन्य भी आये होंगे। इस प्राथवी के अन्य ऊँचे पर्वतों में भी प्राणियों को आश्रय मिला होगा जहाँ तक प्रलयकारी जल न पहुँच सका हो। एक विद्वान् ने लिखा है कि ग्रीश (गिरीश) के पर्वतों की चोटियों पर प्रलयकाल मे प्राण रक्षा हुई। पूर्वयुग हा मे बताना देवों ने इस भूमण्डल पर आर्य वर्तों की स्थापना कर ली थी लेकिन उन्होंने अपना सम्बध अपने मूल स्थान हिरण्यगर्भ प्रदेश से कभी त्याग नही किया। उनका आदर्श था जिसे वे अपना कर्तव्य ही समझते थे कि वृद्धावस्था उसी पर्वतीय देश में हो और वहीं अत मे मृत्यु हो।

---

१ त आयजंत द्रविणं समस्मा ऋषय पूर्वे जरितारो न भूना। असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि सम कृरावन्नि माने। १०.८२ ४

२ परो दिवा परएना पृथिव्या परो देवेभिः असुरै-र्यदस्ति। २०.८२.५

सियों के शत्रुओं का पराजय करे२।" यज्ञ में वेदज्ञ ऋषि जन समूहों के रक्षकों की प्रशंसा करने के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं ऐसे रक्षकों को अवितारा जनानाम् कहते थे (१.१८१.१)। वैवस्वत—माना में कल्याण होने के कारण स्वप्न में भी जीवित प्राणि बहुधा कल्याणकारी वैवस्वत में अपना कल्याण देखते थे। लोगों का इतना प्रभावित होना स्वाभाविक था। भद्रं वैवस्वते चक्ष बहुआजीवितोमनः। १०. १६४.२।

इस यज्ञ से सम्बंध रखने वाली ऋचायें बतला रहि हैं कि यह यज्ञ एक महान् हर्षोत्सव था, रात्रियाँ निर्मल स्वच्छ हो गईं थी नक्षत्रों के समूह रात्रि की शोभा को बढ़ा रहे थे और दिन में दिनकर भगवान की ज्योति पूर्ण प्रकाश दे रही थी३ जिससे निश्चय हो गया था कि प्रलयकारी जल वर्षण का अंत हो चुका है और साधारण स्थिति हो चुकी है और पुनः चारों दिशाओं में राज्य व्यवस्था ठीक हो सकती है। इस कारण इस यज्ञ मे विवस्वत सदन में देववंशी आनन्द प्रमोद कर रहे थे४। सभी देव असुर प्रेम से उस देवस्थली में इधर

---

२ अवोचाम निवचनानि अस्मीन् मानस्य सुनुः सहसाने अग्नौ। वयं सहस्रं ऋषिभिः सनेम विद्यां इषं घृजनं जीरदानुम्॥ १.१८९.८

३ सूर्ये ज्योतिः अदधुः मासि अक्तूनपरि द्योतनि चरतो अजस्रा।

४ यस्मिन् देवा विदथे मादयंते विवस्वतः सदने धारयंते। १०.१२.७

उधर घूम रहे थे। सप्त ऋषि भी उसी स्थान में हर्ष-सुख प्राप्त कर रहे थे जिनका पद प्रतिष्ठा इतनी आदरणीय है कि उनके परे केवल एक विष्णु-विश्वकर्मा ही बतलाया जाता है[१], क्योंकि ये तो आर्य जाति, मानव जाति, के सप्तवंशों को जन्म देने वाले मूल पुरुष हैं।

हमारे प्राचीनतम वैदिक आदर्श हैं "पवित्रवंता चरतः पुनन्ता" और "शुद्धा पूता भवत यज्ञियास" मातायें, नारियाँ इनका सदैव ध्यान रखती थी। इसलिये इस आनन्दोत्सव यज्ञ में भाग लेने के लिये माताओं ने अपने पूतों को विवस्वत सदन के निकट सदानीरा[२] और विपासा के संगम-सन्धि पर शुद्ध किया था। इसका वर्णन ज्यों का त्यों दिया जाता है क्योंकि ऐसे वर्णन हमारी लाखों वर्ष पुरानी सभ्यता को प्रकाश में लाने में सहायक होते हैं:—

हमारी मातायें जल से शुद्ध करती है, घृत से शरीर को मलकर पवित्र करती हैं। देखियेँ शरीर के सभी प्रकार

---

१ तेषां इष्टाने समिषा मदंति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकं आहुः। १०.८२.२। इष्टाने=स्थाने।

२ सदानीरा—जिसमें सदाही नीर बहता रहता है। यह नाम अलकनंदा को शतपथ ने दिया है—सदा नीरेति उत्तरद् गिरेः निःधावति। हिमालय के उत्तरी भाग को उत्तरगिरि नाम दिया है, वहि शतपथ कहता है कि मनोरवमपर्ण उत्तर गिरि में है जहाँ मनु को शरण मिलि—माना में शरण पाने से यम मनु बना। विपासा-बंधनरहित—वर्षाति सरस्वति।

के मलों को विशेषतौर पर बहाती हैं। उनका प्रयोजन अपने पूतों को शुचि-स्वच्छ करने का होता है। मातायें शुद्ध करते समय कहती हैं—पय बहाने वाली इस नदी में औषधियों के तुल्य पुष्टिकारक रस बहता है। जलों में जो पय बह रहा है उस पय से मातायें शुद्ध करती हैं२।

पय के सदृश हिमालय के अन्तरिक्ष में बहने वाली नदियों में सुफेद फेन होता है। इस कारण कवि ने नदी को पयस्वति कहा है। पौराणिक भाषा में ऐसी नदियों को क्षीर-नद्या कहते हैं। बद्रिनाथ में बहने वाली नदियों पयस्वतियों की विशेषता यह है कि उनमें पुष्टि कारक रस बहता है जो औषधिसा होता है। ऐसे जल को पान करना और उसमें स्नान करना शरीर की भीतर बाहरी शुद्धता को उन्नत करता है। जैसे जैसे बद्रिनाथ की नदियों नीचे आती हैं, उनकी विशेषता कम होती जाती हैं। अतः बद्रीनाथ की यात्रा की आवश्यका।

शरीरों को शुद्ध करने के पश्चात् हरव मामूल श्रीमान् जैसे प्रकट होने को अच्छे वस्त्र पहिनने की आवश्यकता

---

२ आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्व पुनंतु। विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः उदीदाभ्यः शुचिरा पूत एमि॥ पयस्वति औषधयः पयस्वन् मामकं वचः। अपां पयस्वत इत् पयः तेनमा सह शुन्धत॥ १०.१७.१०।१४। मान्माता शंनोदेविडभिष्टये आपो भवंतु पीतये। शंयोऽभि स्रवंतु नः। १०.६.४। आपः पृणीत भेषजं वरुथं तन्वे मम। १०.६.७।

समझी जाती थी । सुवस्त्र पहिन कर यज्ञ में पधारे१ । तब सब लोगों ने यज्ञ में विद्यमान होने के लिये शीघ्रता की और द्रुतगति से चल दिये । पूर्व युग के स्कन्द–सेनानियों ने यज्ञ स्थल को प्रथम प्रयाण किया, उन्हीं के समान सप्त होता—सप्तऋषि भी चल दिये । मार्ग में दर्शक उनको जुहार रहे थे२ । सरस्वतियाँ—विद्वान् ब्रह्मवेत्ता स्त्रियाँ अश्व और वृषभों पर सवार होकर आये । ये देवियां अपने माता पिता गुरुजनों सहित आसनों पर विराजमान हुये । सरस्वतियों से निवेदन किया गया कि वे वृद्ध जनों के दक्षिण भाग में बैठें यदि यज्ञ में भाग लेने के इच्छुक हों । पूजा करने के लिये महर्षों को अर्घ दिया गया । सरस्वतियों को विशेष सम्मान हुआ । देव भक्तों ने उनकी स्तुति की, अध्वर्यु ने उनको मुकुट पहिना कर आदर किया, सुकीर्ति के इच्छुक उनसे प्रार्थना कर रहे थे क्योंकि सरस्वति अपने दासों को बलवीर्य प्रदान

---

१ युवा सुवासा परिवीत आगात् । वद्दारायध पेशानानि वगानो । १०.१.६ ।

२ दूणश्च स्कन्ध प्रथमा धूनिर्मं च योनिमनु यश्च पूर्वः । गमानं योनिमनु संचरंतद्रप्सं जहोम्यनु सप्त होत्रा ॥ १०.१७.११

करती है३। ऐसा आदर सत्कार होता था वेदज्ञ स्त्रियों का। इस यज्ञ में उन युवा युवतियों का भी अमृतबंधन हुआ जिनके आपस में स्वच्छ प्रेम हो गया था अर्थात् "तू मेरे लिये, मैं तेरे लिये"। इसके पश्चात् सभी स्त्री पुरुषों को अपने अपने गृहों को लौटने का प्रबंध हुआ। वृद्धों को, नव विवाहिता दंपतियों को वाहन दिये गये॥

---

३ सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिः देवि पितृभिः मदंति। आ सद्य अस्मिन् बर्हिषि मादयस्व अनमिवाइष आ धेहि अस्मे॥ सरस्वतिं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञंऽभिः नक्षमाणाः। सहस्रार्धं इडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि॥ सरस्वतिं देवयंन्तो हवन्ते सरस्वतिं अध्वरे तायमाने। सरस्वतिं सुकृतो अहृयंत सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥ १०.१७. ७ ६ तायमाने=ताजमाने नक्षमाणा=चित्र-विधित्र।



* वृष्टियज्ञ १०.६८.१-१२ *

पूर्व काल में जब वर्षा कम होती थी या नहीं होती थी जिससे अन्नोत्पत्ति में कमि पड़ जाती थी, प्रजा को कष्ट होने लगता, विभुक्षितों की हाय रोटी, हाय रोटी की गगनभेदी आवाज उठती रहती थी, विद्वान् लोग कहते रहते थे "विभुक्षितं किं न करोति पापं" के कारण चोरी डाकाजनी, मारकाट के नाना उपद्रव, पाप अपराधों की वृद्धि होती जायगी यदि "नराणांच नराधिप" शीघ्र ही वृष्टि यज्ञ नहीं करते१।

---

१ इससे यह नतीजा निकालना गलत होगा कि पूर्वकाल में कूल, नहरें, कुयें इत्यादि सिंचाई के साधनों का अभाव था। वैदिक समय में तो पशुओं के चारागाहों में भी निकटवर्ति जलस्रोतों से मरुत सेना कूल निकालती थी, पुष्कर, जलकुंड बनाती थी। गौतम की सहस्रों धेनुओं को इसी तरह जल प्राप्त होता था। इसकी कथा ऋग्वेदिक इतिहास में दी गई है। वर्तमान समय में रूस सरकार भी तो नहर, डैम, तालाब, कूप इत्यादि बनाकर अधिक अन्न उपजाने का प्रयत्न विविध प्रकार से करके प्रजा का हित कर रही है। लेकिन यदि दो चार साल लगातार जलवर्षण न हो तो, नहर कुंड इत्यादि में पानी कम हो जायगा, धरती सूख जायगी, इतने महान् प्रयत्न निष्फल से दृष्टि गोचर

(शेष पृष्ठ १२४ पर)

एक समय राजा शतनु के राज्य मे अनावृष्टि के कारण अन्न मे कमी हो गई, राजा के अन्न के भडार खाली हो गये, प्रजा में हाहाकार होने लगा, राजा की निंदा होने लगी। वेदज्ञ विप्रों से सलाह ली गई। उन्होंने कहा, राजा का सर्वोपरि कर्तव्य है कि वह प्रजा की उदरपूर्ति के लिये सफलता पूर्वक प्रयत्न करता रहे, वर्ना वह यशस्वी नहीं हो सकता। यदि वह यशस्वी होने की परवाह नहीं करता है तो प्रजा मे असतोष फैलेगा। प्रजा ही के युवा वीर मरुत सेना में भरती रहते हैं, वे न तो राज भक्त रहेंगे और न राज्य मे शाति कायम रहेगी। इसका दु खद, दुष्परिणाम यही होता है कि ऐसा अयोग्य कुनाम प्राप्त राजा पदच्युत किया जाता है। अत, श्यावास्व भी मरुत सेना की प्रशंसा मे कहता है "तुमतो यज्ञशील पुरुष को प्रजा के हित के लिये राजा बनाते हो?।" आजगर्ति कहता है - "जो व्यक्ति हम प्रजाजनों की उदरपूर्ति के लिये, क्षुधा शाति के लिये असीम चक्कर लगाकर यश प्राप्त कर सकता है, मानव समाज मे से

होने लगेंगे। आजकल विद्वान् लोग नकली उपायों से वर्षा वर्षाने के अनुभव प्राप्त कर रहे हैं, लेकिन वे बहुत अधिक खर्चीले हैं। तुमाइस के से मनो-रंजन के तमाशे जैसे इस समय दीख रहे हैं।

२ इस समय भि सेना के बल से इजिप्ट का नर नायक (बादशाह) पदच्युत किया गया है और जनरल नजीब शासन चक्र चला रहे हैं। युयं राजानं इयं जनाय विभ्वतष्टं जन यथा यजत्रा ५.५८.४।

वही मननशील वरुण होकर राजा वरुण का पद ग्रहण करने के योग्य होता है१।

तब वेदज्ञों की शुभ सम्मति के अनुसार वृष्टि यज्ञ करने का निर्णय हुआ और येक राजदूत वेद के पूर्ण ज्ञाता ऋषियों के पास देव लोक मानावर्ष को भेजा गया। वहाँ से देवापि ने यज्ञ के बृहस्पति का पद ग्रहण करके यज्ञ करने के लिये प्रस्थान किया। उधर शंतनु की राजधानी में अश्वसेना, मरुत-सेना गणपति गणेपु की अध्यक्षता में विस्तृत यज्ञ का प्रबंध करने लगे। गणपति गणेपु स्वयं विप्रतम कवि होते थे और बिना इनकी विद्यमानता के कोई भी शुभ कार्य निर्विघ्न समाप्त होना कठिन होता था२। १०.११२.६। इस महान् अवसरों पर जो प्रबंध किया गया था, उसका वर्णन किया जाता है।

---

१ उत यो मानुषेष्वा यशः चक्रे असाम्या। अस्माकं उदरेष्वा। १.२५.१५.

असाम्या चक्रेऽसंख्य चक्कर लगाकर असंख्य प्रयत्न करके यशस्वी होता है।

२ वैदिक समय के गणपति को कहते थे 'विप्रतमं कविनाम्'। इनका पद इनस्पेक्टर जनरल पुलिस या फौज का कमांडर का सा था। इनका नाम बतलाता है कि ये सिपाहियों के अफसर थे। प्रत्येक कार्य में इनका बड़ा आदर होता था। याचना करने वाले लोगों से ये गरवाभार दर्शाना जानते थे, रण कुशल थे (१०. ११२.६।१०)।

देवापि का स्वागत

जब यज्ञ की तैयारि पूर्णरूप से हो चुकी, राजा प्रजा देवापि के आगमन का मार्ग देख रहे थे। देवापि के पहुँचने पर, शंतनु ने देवापि का स्वागत करते हुये निवेदन किया "हे देव दूत युवा१ जैसे देवापि मेरे यज्ञ में पधार कर संसार को चकित करने वाले ज्ञानबल से, इस वृष्टि यज्ञ की चौकसी कीजिये। सब बाह्य विषयों से विमुख होकर, मेरे हित के यज्ञ कार्य में निमग्न हो जाइये। अपने आसन पर विराजिये, अपनी कांतियुक्त वेद वाणियां मुझे प्रदान कीजिये"। शंतनु ने पुनः निवेदन किया—इस यज्ञ में तेरे दर्शनार्थ सहस्रों रथों पर सवार होकर रोहिदाश्व देश के स्त्री पुरुष आये हैं इस इच्छा से कि वे तेरे मुखारविंद से यज्ञ में वैदिक ऋचाओं का मधुसूद प्रवचन श्रवण करें। तुझको तो पूर्व काल के ऋषियों की वेद वाणियां आती हैं, सभी अध्वर्यु तुझे बार बार पुकारते हैं, तुझसे सहायता लेते हैं जिससे यज्ञ कर्म सफलता पूर्वक होता रहता है। १०.६८.२।६।

यज्ञ देश का निरीक्षण

क्योंकि यज्ञ का बृहद् भार देवापि पर था, जैसा कि -

---

१ शंतनु ने देवापि को अजिर (अजीर्ण=युवा) इसलिये कहा गया है कि उसके शुद्ध पवित्र और इंद्रिय-जित होने से वह युवा जैसा दिखाई दे रहा था, ब्रह्म-वर्चस उसके चेहरे से टपक रहा था। तब उसने यज्ञ के होतारों का चुनाव किया।

येक महान् साम्राज्य के अधिपति वृहस्पति पर होता है, उसने यज्ञ देश का निरीक्षण किया। उसने देखा कि प्रत्येक यज्ञ कुंड की परिधि में सप्त वेदज्ञों के लिये सप्त आसन बिछे हुये हैं, तृमत समिधा समहीत है। सोमरस से और घृत से आहुतियाँ देने के लिये सोम और घृत से भरे पन्या या मटके मौजूद हैं। चमसों की आवश्यक संख्या है। यज्ञ स्थल में आने जाने के पथ सुगम हैं। देवीद्वारों की संख्या पर्याप्त है। अष्ट दिशाओं के अष्टद्वार खूब चौड़े हैं। रोहिदाश्वी इत्यादि देशों से आये हुये दर्शकों के उपस्थान सुखप्रद हैं। उनके रथों, अश्वों, वृषभों के लिये अस्तः, ग्रास, रातव्य, जल का प्रबंध ठीक है।

देवापि ने तब भोजनालय की दिव्य भूमि की तरफ पदार्पण किया उसने वहाँ देखा कि ऋत का वर्ताना करने वाले सुजाता स्त्री पुरुषों ने बलवर्धक अन्न संग्रह कर रक्खा है। मधु; घृत, नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों के बड़े-बड़े ढेरों की वृद्धि हो रही है१। शंतनु के देश के स्वयंसेवक जैसे स्त्री पुरुष इस कार्य में सहायता दे रहे हैं। अपने घरों से भी मधुर अन्न उन्होंने यहाँ जमा कर रक्खा था। तब देवापि ने अतिथि उप गृहों को देखा। वहाँ स्त्रियों का ही प्रबंध था। ये स्त्रियाँ सब स्वश्री से शोभायमान, सुपेशा, मधुर भाषिणि, विद्वान् उरुभारा, दर्शनीय थी। प्रबंध कर्ता नारियाँ वृहद् गृहस्थों की चतुष्कपर्दा, सुवेशा, घृत प्रतीका युवतियाँ थीं

---

१ ऋतस्य हि वर्तनय सुजाता इषो वजाय प्रदिव सचंते। अधिवांस रोदसि वावसाने घृतं, अन्नैः वा वृधाते मधूनाम्॥ १०.५.४॥

इसके येक किनारे यम नियम से ववरी भूखे प्यासों की इन्छापूर्ति पालन पोषण हो रहा था। इससे ऐसा विदित हो रहा था कि स्त्रियॉं ही पूर्ण राजसि ठाठ बाट से राज्य कर रही हैं। उन्होंने विभूक्तितों की मार्गो को पूर्ण करने मे रोष का प्रदर्शन विलकुल नहीं किया। शात चित्त से सव कार्य हो रहा था। इन यत्रियों को कोई नहीं पहिचानता था कि ये कौन हैं, कहाँ से आये, और कहाँ जायंगे। अतरिक्ष से विविध पदार्थ लाकर यजरियों की क्षुधा तृष्णा पूर्ण हो रही थी१। इनकी तरफ विशेष ध्यान दिया जाता था ताकि देश देशातरों मे घूमते हुये ये वम्रि शतनु का वदनाम न करें। यह येक दृश्य था, इष्टापूर्ति यज्ञ का।

इसके पश्चात् देवापि यह देखने लगा, यज्ञ मे आने वालों से होतार कैसा व्यवहार कर रहे हैं। ऋतायिनी मायिनी स्त्रियॉं अपने शिशुओं सहित, पतियों के सग यज्ञ स्थल मे पहुँच रहे थे तो होतार कहते जाते थे "पत्निवतों नमस्य

---

१ सप्त स्वश्री अरुषि वावसानो विद्वान् मध्व उज्जभारा दृशके। अंतः यमे अंतरिचे पुराजा इच्छन् वव्रि अविदत् पूषणस्य। १०.५.५। सप्त स्वश्री—मधुर भाषण, घृत प्रतीका, सुवासा सुवेशा, विद्वान्, उज्जभारा, चतुष्क-पर्दा और दृशेकं। ये सप्त स्वश्री कहलाती हैं। उज्जभारा—उभड़े हुये स्तन, दृशेकं—देखने मे येक ही। वव्रि—वरे मे रहनेवाला (ग०)। यह ऋचा वतला रही है कि आनंद उत्सवों में नारी समाज कैसे उत्साह से कार्य करती थी।

नमस्य" । इस यज्ञ मे आइये, आप तो अपने आसन से परिचित हैं । (यज्ञ मे तीन श्रेणि की स्त्रियां जानि थी—भारति, इडा और सरस्वति)२ । आसनों की तीन पक्तियाँ चिह्नित थीं । पाराशर इन दम्पतियों की प्रशसा मे कहता है कि ये पति पत्नियाँ ऐसे सच्चा सखी थे कि एक दूसरे की रक्षा करने मे प्रत्येक निमिष सदा ही अपने तत्व को परित्याग करने को भी तत्पर रहते थे ।

यहाँ प्रबध देखने के पश्चात् देवापि, गणपति, और शंतनु मे आपस मे शुभ वार्तालाप हुआ । तब वे अष्ट पथों, अष्ट द्वारों को देखने गये,जहाँ अश्व सेना के अनुभवि गुप्तचर अफसर नियुक्त थे । पथों के उभय पक्ष मे स्तम्भों की कतार शोभा दे

---

२ ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं यज्ञतुः वर्धयंति । १०.५.३ । ऋतायिनी=ऋत व्यवहार करनेवाली । मायिनी=प्रेमपूर्ण ।

सं जानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवंतो नमस्यं नमस्यन् । रिरिक्वांसः तत्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युः निमिषि रक्षमाणा । १.७२.५ ।

इमं नो यज्ञं आगमन् तिस्रो देवी सुपेशसः । ६ ५.८ । सुपेशसः=सुंदर पोशाक से शोभायमान् ।

नक्तोषासा सुपेशसा अस्मीन यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हि आसदे । १.१३ ७ । पत्नियाँ अपने पति के साथ यज्ञ में जाती थीं जैसे रात् के पीछे पीछे उषा जाती रहती है ।

रही थी। द्वारों में यह प्रबंध था कि दूर यज्ञ भूमि के भीतर पदार्पण न कर सकें। तब देवापि ने गणपति से कहा—आप तो रक्षमाण है, कृपा दृष्टि से देखते रहिये, आप तो वसुपति भी हैं, सब से सखाभाव से वर्तावा करते हुये सबको सखा बनाते रहोगे तो रण करने की आवश्यकता ही न होगी। हमें यही आशा है। यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगा। सर्व गण स्वस्ति होती रहेगी।

तब देवापि यज्ञ प्रदेश के मध्य भाग मे गया, जहाँ चैनो नृत्य संगीत का महोत्सव चित्र विचित्र, विविध रंग के केतुओं से जगमग जगमग कर रहा था और केतुओं का फरफराहट मानो आनंद हर्ष की सूचना का चिन्ह था।

तब इस वृष्टि यज्ञ का यजमान शंतनु यज्ञ के बृहस्पति को अप्नानाना तीर्थ को ले गया। जो सोम वनस्पति मुंजावत पर्वत, शर्यणा पर्वत, ध्वस्रा और पुरिप्पिए१ की तटवर्ति भूमि से नदियों मे बहान करके हरद्वार से घीडो मे गाड़ियों मे पृपति अश्वों मे वहाँ पहुँचि थी, उसका निरीक्षण किया। अवत्सार ऋषि ने सोम वनस्पति मंगवाकर ध्वस्रा और पुरुपंति में तीन तीन सौ तनों के सहस्रों बोझों का ग्रहान कराया था२। असित देवल ने जो वनस्पति भेजी थी, वह पीले रंग की और हरे रंग की दो प्रकार की थी और उससे

---

१ ध्वस्रयो पुरुषंत्योरा सहस्राणि दद्महे। तरत्स मंदी धावति।

२ आ ययोः त्रिशतं तना सहस्राणि दद्महे। तरत्स मदी धावति। ६.५८.३।४।

जो रस निकलता था वह तीव्र तीक्ष्ण था। उसमें मधु अधिक मिलाना पड़ता था। इस वनस्पति के सहस्रों वल्श थे२। अवत्सार ने वाके बनाकर वहन कराया था लेकिन देवल ने वनस्पति के बड़े बड़े पेड़ों को काटकार सिंधु में तैराया। वनस्पति कहीं-कहीं भौंरो में भी फंस गई थी। "आनंद को टपकाने वाला सोम विपन में सिंधु की लहरों में सदन बना कर निवास कर रहा है४। सोम का फंस जाना यह वाक्य

---

२ वनस्पतिं पवमान मध्वा समंग्धि धारया। सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययं। ६.५.१०।

वरत् स मंदी धावतिन्वह सोम वनस्पति मंदी चाल से, आनंद से नदी में तैरती हुई आगे धावन कर रही थी।

सहस्रवल्शं=सहसों-बहुत मारों वाली, भ्राजमानं= तेज, तीव्रता रखनेवाली हिरण्ययं=पीले रंग की, हरितं=हरी।

४ मदच्युत क्षेति सादने सिंधो उर्मा विपश्चित्। ६.१२.३।

मदच्युत=आनंद को चुवाना, क्षेति=निवास करता है, सादने=सदन, विपश्चित=सिंधु के दोनों पार्श्व में विपन-वन था, ऐसा था वह स्थान जहाँ सोम वनस्पति जल भ्रमर में फंस गई थी और सिंधु की उर्मियों से रंग रही थी।

इस तरह किया मानो कुल जिम्मेवरी की शक्ति को उसने धारण कर रक्खा था। देव के श्रवण करने योग्य वृष्टि बनाने की ऋचाओं की ध्वनि की रणरणाहट से वाचा बृहस्पति हमारी इच्छाओं को पूर्ण करे। हे अग्ने! जब शुशुचान अर्ष्टिषेण२ देवापि मानव समाज के हित के लिये तुझे प्रज्वलित करता है, समस्त विश्व के आनन्दमय देव मेघों के द्वारा वर्षा को वर्षाते हैं। १० ६८ ७८। हे अग्ने ' ६० सहस्र आहुतियाँ वर्षा करने वाले इन्द्र के भोग के लिये आनद से दी गई हैं। वृष्टिदेव के आने के पर्यो के विद्वान् प्रार्थना मे कहते हैं कि प्रत्येक ऋतु मे आकाश को जलरूप युक्त मेघ धारण करे। १०.६८ ११।

६० सहस्र आहुतियों के होने पर भी वर्षा नहीं हुई। यह देखकर अर्ष्टिषेण देवापि ने सुमति सम्पन्न यज्ञ करने वाले देव देवियों को सचेत चौकन्ना करके उपदेश दिया कि निष्ठा वान् होकर ६६ हजार (असंख्य) आहुतियाँ अग्निदेव को समर्पण की जाय। ये आहुतियाँ निष्ठा से दी जाने लगी तो शूर जैसे शत्रुओं का नाश करते हैं, उन दोषों का नाश हो गया जो वर्षा के बाधक थे। इसका फल यह हुआ कि उत्तरी और दक्षिण समुद्रों से जल आकाश मे पहुँच कर वृष्टि होने लगी। बृहत् आकाश मे मनुष्यो के उपकार के लिये जल वर्षण बडी तीव्रता से होकर भूमियाँ तर बतर होकर भूमियों में जो जल कुड सूख गये थे उनसे भी पानी प्राप्त होने लगा। १०.६८ ४।१०।१२। आगे जो कुछ हुआ पाठक् स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

---

२ शुशुचान=जिसका चेहरा शीशा जैसा चमक रहा था, अर्ष्टिषेण=इंद्रीयजित, ब्रह्मचारी।

चंवो

रात्रकाल मे प्रत्येक दिवस रिंग डान्श१ प्रत्येक ऋषि माम मे होता ही था। शंतनु देश में भी इस आनंदमय अवशर पर चंवों आयोजन बड़े पैमाने पर किया गया। चंवो के स्थानों मे शामियाने तनेर हुये थे। अप्नाना तीर्थ के नीकट ही, मोमरस पान करके देव मनुष्य मरुतों की इंतिजारी कर रहे थे। ये लाल पोशाक पहिन कर अपने आयुधों को चमकाते हुये चंवों के महीवृत्व मे क्रीड़ा करते थे। आज दिन योरप में चंवों Round the Table होता है, इदुदेश में Round the Fire होता था। चम्वो को अनर्वाणं रथ भी कहते थे। इसमे दो दल होते थे३। राजा तो प्रजा के संग किड़ा करने मे नहीं हिचकिचाते थे। कहीं अश्विनो भी चंवो क्रीड़ा कर रहे थे। यहाँ उस चम्वो दृश्य का भी वर्णन किया जाता है, जिसकी योजना इंद्र के शरीर रक्षकोने, ढोली

---

१ जिसमें रेंगते हुये, पैर की आहट से दन दन करते हुये दो दल गीत हुये नृत्य करते हैं। अंग्रेजी के रिंग और डान्श शब्दो को हमारे ही रेंगना और दन दन या दनदनाहट शब्दों ने जन्म दिया।

२ तनना शब्द से Tent शब्द की उत्पत्ति हुई।

३ अनर्वाणं रथं १.३७.१; क्रीड़ं चंवो विश पूयमान इंद्र ६.६६.२१, यत् क्रीड़त मरुत ऋष्टिमंत। ये पृपतिमि ऋषि मि साक वासिमि रंजिमि १.३७.२। संवृत्तः धृष्णु उक्थां महीवृतं मदं। ६.४८.२।

साबित कर रहा है। वनस्पति के ढेर को देखने के पश्चात् यजमान और पुरोहित उस स्थान को गये जहाँ युवतियाँ तृपाल के पास हरे सोम को पत्थरों से कूट रहे थे और हिन हिन का सा शब्द हो रहा था१। वहीं तृपला मे रखकर अभिपुत हो रहा था। कुछ युवतियाँ अपने दोनों हस्तों की दश अगुलियों से कूटे हुये हरे सोम को रस निकालने को मरोड़ रही थीं२। और साथ ही आनन्द प्राप्ति के गीत शुंभमाना स्त्रियाँ गा रही थी।

यहीं ऋतायु शुंभमाना युवतियाँ भेड़ की ऊन के चर्म पर बैठकर अपनी हथेलियों से सोम के गूदे को मरोड़ कर छान रहे थे३। वहीं उखलों मे सोम का गूदा कूटा जा रहा था। १ २८ ३।४। हजारों घड़े सोम रस से भरे वहाँ मौजूद थे।

विप्र भोज

यज्ञ के कार्य कर्ता अग्निसपि, ऋपिपित्र, होलार इत्यादि को नाना प्रकार के भोजन पदार्थ दिये गये थे, उस समय

---

१ एतं त्रितस्य योपणा हरिं हिन्वंति अद्रिभिः।

त्रितस्य 'योपणा=उषा के युवतियाँ तृपला के पास थी, कुछ तो कूट रही थीं और कूटे हुये मो तृपाल पर रख रही थी।

२ एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यंते अपस्व। याभि मदाय शुंभते। ६.३६.२।३।

३ शुंभमाना ऋतायुभिः मृज्यमाना गभस्त्यो। पवंते वार अव्यये। ६.६४.५।१ शुभमाना=देखने में सुंदर, ऋतायु=ऋतु प्राप्त युवतियाँ।

जिन से ऋचाओं का प्रवचन हुआ था उनका अनुवाद निम्न लिखित है —हे बृहस्पते! इन दोष रहित शुद्ध विविध प्रकार के भोजन पदार्थ, पेय पदार्थों को भोग करने वाले हम वेदज्ञ विप्रों की वाचा-वाणि इस यज्ञ में विद्युत् सदृश हो, जिससे शतनु की भूमि में वृष्टि बन जाने के लिये आकाश से मधुर जल वर्षण हो। जब देवापि सहित समस्त विद्वत् मंडली हविषा ग्रहण करने को ये तो प्रार्थना की गई है इन्द्र! हमें मधुर वर्षा की सहस्रों जल धारायें प्राप्त होकर इस देश की भूमि में प्रवेश करें। यहाँ के होतार आसन जमाकर दृढ चित्त से ऋतुओं के अनुसार यज्ञ करते रहें। (१०.६८ २१४) इन ऋचाओं का प्रवचन होने के पश्चात् भोजन किया गया।

मंगल स्नान

यज्ञ कर्म को करने के पेश्तर ही, यजमान शतनु को देव देवियों ने स्नान कराया। इस समय जिन ऋचाओं का प्रवचन हो रहा था, उनमें से येक ऋचा का अनुवाद यहाँ दिया जाता है। हे विद्वान् देव देविया! यजमान को स्वय स्नान यजन कराओ, अप्रचेता-अविद्वान् इस पाप-पवित्र यज्ञ को कैसे कर सक्ते है? अर्थात् यजमान में पवित्रता कैसे ला सक्ते हैं। जिस तरह देव देवियाँ ऋतु के अनुसार स्नान करती हैं, उसी तरह इस सुनावा यजमान के तन्व को मगल स्नान से पान करो। १०७.६।

यज्ञ

यज्ञ भूमि में देव देवी होतारों[१] का वृत सा लगा हुआ दिखलाई दे रहा था जो यज्ञाहुती दे रहे थे। उनके बीच शंतनु के पुरोहित देवापि ने कृपा पूर्वक यज्ञ कर्म करना आरम

---

१ देवा देवी यजतां यज्ञियां इह। १०.१०१.६।

वहन करने वालों ने और पार्षदों में की थी। उनका असली अभिप्राय यह दिखलाने का था कि उनकी लाल पोशाक फट गई है राष्ट्र केतु भी उनके पास नहीं है और वे चंवो में सोमरस पीकर अपनी तृष्णा को पूर्ण करेंगे। इंद्र से निवेदन किया गया चंवो में शरीक होने को। इंद्र के ये सब सेवक चंवो के स्थान में विद्यमान में। मधुछंदा ने इस चंवो नृत्य कर वर्णन यों किया है "वहाँ बैठे हुये लोगों ने नियम पूर्वक परिचरण करने के लिये मुस्कराते हुये योजना बनाई और अग्नि को ऐसा प्रज्वलित किया कि प्रकाश उस समस्त दिव्य भूमि में फैल गया। सोम पान करने की कामना वालों के दो दल चंवो के रथ में जुड़ गये। ये थे लालकुर्तिवाले सेवक जो धृष्णु इंद्र को वहन करते थे। इसका फल यह हुआ जिन मर्या-मरुतों के पोशाक नहीं थी उनको पोशाक मिल गई, जिनके पास केतु नहीं थे उनको केतु प्राप्त हो गये और वे सब सप्तरंग की उषा के सदृश प्रकट होकर चमकने लगे॥

शतं जीव शरदः वर्धमानः॥

❀ इति ❀

ऋंठ करिये

१ ऋतस्य ही वर्तनय सुजाता ।

२ सप्त मर्यादाः कवयः ततक्षु तासां येकां इत् अभ्यं हुरो गात् ।

३ ऋताय सप्त दधिपे पदानि जनयन् मित्रं तन्वे स्वायें ।

४ ऋत वाक्येन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत ।

५ ऋतं वदन् ऋत द्युम्नं सत्यं वदन् सत्य कर्मन् ।
श्रद्धां वदन् सोम राजन् ।

६ आ देवानां अपि पंथां अगन्म,
यत् शक्नवाम तदनु प्रवोढ्हम् ।

७ अदेवयून् समरणे जघन्वान् ।